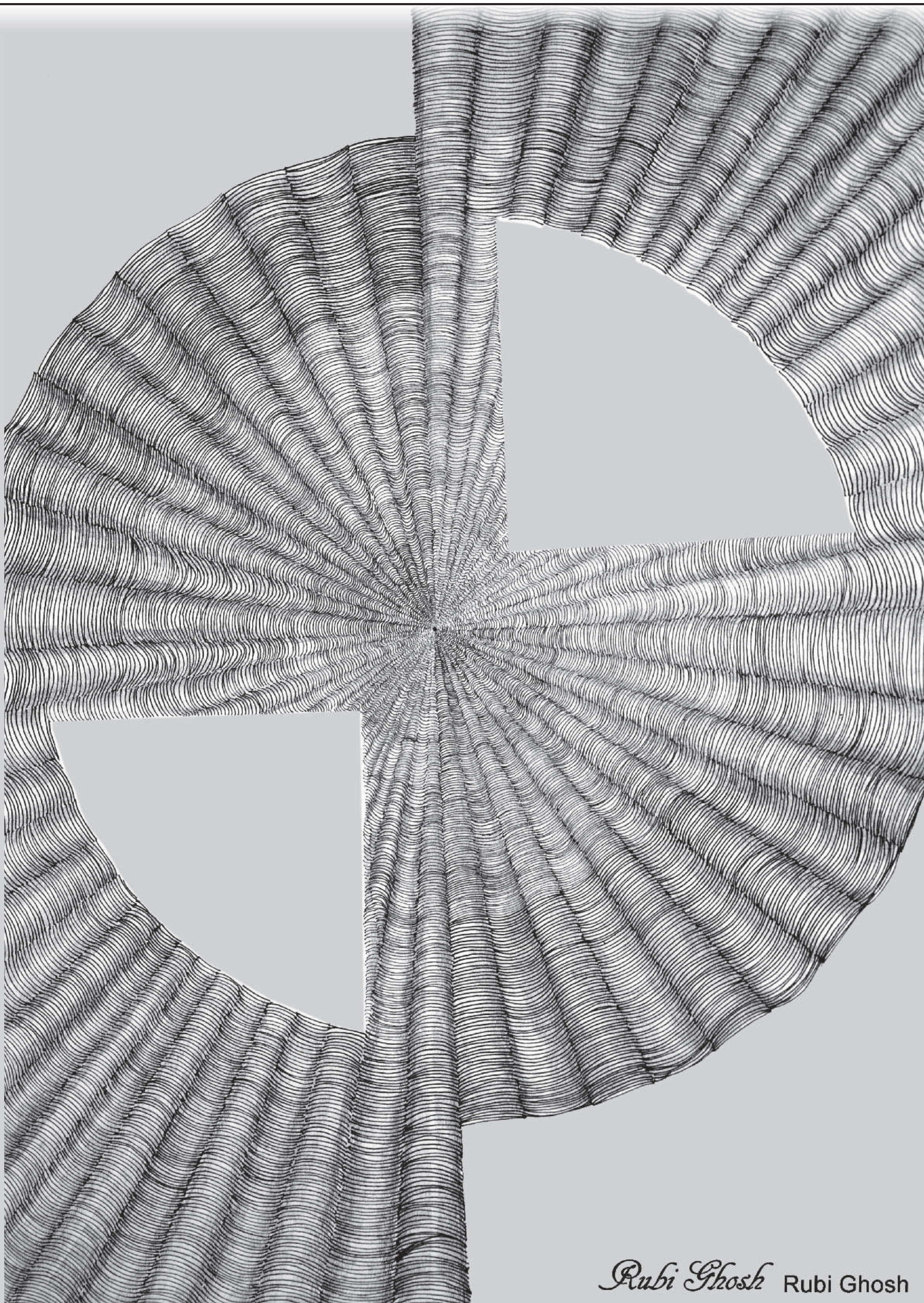
अनौपचारिका

समकालीन शिक्षा-चिन्तन की मासिक पत्रिका

वर्ष : ४६ अंक : १२ मार्गशीष-पौष वि.सं.- २०७७ दिसम्बर २०२० पृष्ठ २८ RNI 43602/77 ISSN No. 2581-981X



Rubi Ghosh Rubi Ghosh

गुरु नानक जयंति के दिन समिति में एक अनूठे उत्सव का आयोजन किया गया। यह उत्सव समिति के अपने साथियों के अभिमुखीकरण का उत्सव था। पूर्णरूप से एक कार्यालयी उर्फ घरेलू उत्सव। अंग्रेजी में सोचने वाले इसे एक 'इन हाउस ईवेंट' भी कह सकते हैं। विशेष अतिथि के रूप में युवा कलाकार एवं समिति के सदस्य अमित कल्ला ने शिरकत की।

इस उत्सव में नानक देव जी के वचन सार पर समिति के अध्यक्ष रमेश थानवी ने टिप्पणी की। टिप्पणी का केन्द्र बिन्दु था-

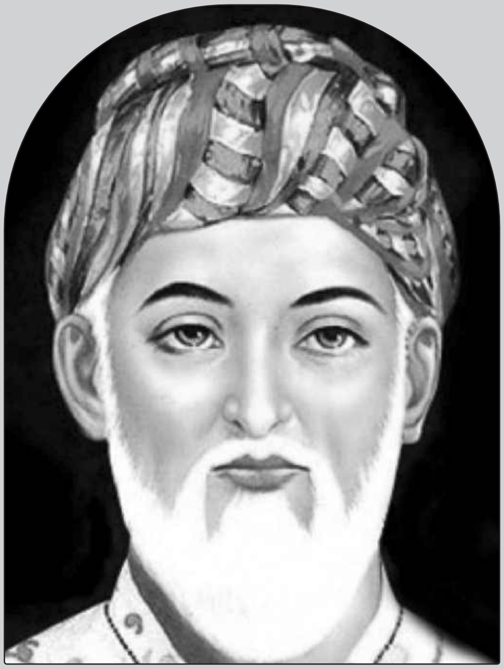
'एक नूर तैं सब जग उपज्या, कौण भलै कौण मंदें।'

समिति द्वारा चलायी जा रही मिशन ताना बाना के उद्देश्य को संबोधित था यह उत्सव। इस अवसर पर 'जपुजी साहिब' का पूरा पाठ सुना सभी साथियों ने। फिर विनोबा जी द्वारा की गयी जपुजी साहिब की टीका समिति साथियों को भेंट की गयी। साथ ही जपुजी साहिब के वचनों के बनवा कर समिति के बाहर प्रदर्शित किये गये। इन पर भी विनोबा जी द्वारा किया गया भाष्य मुद्रित था। उत्सव का उद्देश्य था मिशन ताना-बाना में संतों के शाश्वत वचनों का समागम। एक शैक्षिक प्रयोग। ❑





आवरण पृष्ठ पर ली गई कलाकृति रूबी घोष की है। रूबी बेंगलुरु में रहती हैं। शिक्षिका हैं। पिछले कई सालों से विशेष बच्चों को पढ़ा रही हैं। फोटोग्राफी और जेनटेंगलिंग में रुची रखती हैं।



रूठे सुजन मनाइए, जो रूठे सौ बार।
रहिमन फिरि फिरि पोइए, टूटे मुक्ता हार।।

रहीमदास जी कहते हैं कि यदि आपका प्रिय सौ बार भी रूठे, तो भी रूठे हुए प्रिय को मनाना चाहिए। क्योंकि यदि मोतियों की माला टूट जाए तो उन मोतियों को बार बार धागे में पिरो लेना चाहिए। क्योंकि मोतियों की माला हमेशा सभी के मन को भाती है।

रहिमन धागा प्रेम का, मत तोरो चटकाय।
टूटे पे फिर ना जुरे, जुरे गांठ परी जाय।।

रहीमदास जी कहते हैं कि प्रेम का रिश्ता नाजुक होता है, इसे झटका देकर तोड़ना उचित नहीं होता। यदि प्रेम का धागा एक बार टूट जाय तो फिर इसे मिलाना कठिन होता है और यदि यह मिल भी जाए तो टूटे हुए धागों के बीच में गांठ पड़ जाती है।

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सहचित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि।।
समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।। ऋग्वेद

अनौपचारिका

समकालीन शिक्षा-चिन्तन की पत्रिका
वर्ष : ४६ अंक : १२ मार्गशीर्ष-पौष वि.सं. २०७७ दिसम्बर, २०२०

क्र म

अपील

समिति के सभी सदस्यों, दूर-दराज के मित्रों एवं भारत के विभिन्न राज्यों में फैले सुधी पाठकों से निवेदन है कि समिति के प्रकाशन की निरंतरता बनाये रखने के लिए अपनी सहयोग राशि पूरी उदारता के साथ भिजवाने का अनुग्रह करें।

आज किसी भी पत्रिका का प्रकाशन बहुत मुश्किल काम है मगर समिति अपने पूर्ण सेवा भाव के साथ अनौपचारिका को पिछले ४५ वर्षों से निरंतर निकाल रही है। सभी प्रबुद्ध पाठक जानते हैं कि अभी हाल ही में कादम्बिनी भी बंद हो गई है जो हिन्दुस्तान टाइम्स का प्रकाशन था। ऐसी स्थिति में हम कटिबद्ध हैं कि अनौपचारिका निरंतर निकलती रहे। आपका सहयोग सादर अपेक्षित है।

संस्थापक संपादक एवं संरक्षक :
रमेश थानवी
कार्यकारी संपादक :
प्रेम गुप्ता
प्रबंध संपादक :
दिलीप शर्मा

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति
७-ए, झालाना डूंगरी संस्थान क्षेत्र,
जयपुर-३०२००४
फोन : 2700559, 2706709, 2707677
ई-मेल : raeajaipur@gmail.com

सद्भावना सहयोग :
व्यक्तिगत ३५०/- रुपये
संस्थागत वार्षिक
शुल्क ५००/- रुपये
मैत्री समुदाय ३०००/- रुपये

शिक्षा में शीतलता कहां ?

ऐसी वाणी बोलिए मन का आपा न खोए।
औरन को शीतल करे, और आपहुं शीतल होय।।

–कबीर

मित्रो दिसंबर का यह महीना मौसम में शीतलता का महीना है। आओ ढूंढें कि यह शीतलता शिक्षा में कहां समायी है। यह साल का आखिरी महीना भी है। मुड़ कर देखने का महीना। साल भर के कामों को मूल्यांकन करने का महीना। यह भी देखने की बात है कि हम खुद से कितने आगे बढ़े हैं। कहीं ऐसा तो नहीं है कि हमने प्रगति के नाम पर, विकास के नाम पर इंसानियत को ही खो दिया है? क्या शिक्षा ऐसी विकट परिस्थितियों का सामना करने में हमारी सहयोगी बन पाई है । क्या शिक्षा ने सारथी होने की भूमिका निभाई है?

क्या शिक्षा लोगों को समर्थ बनाने में, सक्षम बनाने में सफल हो पाई है। क्या शिक्षा हमें सामर्थ्यवान, धैर्यवान बना पाई है? असल शिक्षा लोगों में माधुर्यता लाती है। लोगों में क्रोध के बजाय शीतलता पैदा करती है।
हमें मिलकर यह विचार करना चाहिए कि शिक्षा में शीतलता का गुण कहां खो गया? क्या देशय की राजधानी दिल्ली के दंगाग्रस्त इलाकों में कोई भी शिक्षित आदमी नहीं बसा था?

यह कैसी विडंबना है कि आज हम में न तो धैर्य ही रहा है और न ही वाणी में शीतलता। शिक्षा का काम लोगों में धैर्य पैदा करना था न कि आवेश और आवेग। शिक्षा से अपेक्षा भी यही थी कि लोग शांति से आपकी बात को सुनेंगे, समझेंगे और जानेंगे। न केवल समझेंगे बल्कि हर कदम ,ताल से ताल मिला कर आपके साथ रहेंगे।

यह बात तो सच है कि कोरोना के कहर ने व्यक्ति को ऐसे कगार पर लाकर खड़ा कर दिया है कि व्यक्ति अपने मूल्यों को खो चुका है। न केवल मूल्यों का ही क्षरण हुआ है बल्कि पूरी मानवता ही खतरे में पड़ गई है। यहां तक कि मनुष्य होने के मायने ही बदल गए हैं।

हमने अपने मूल्यों को, अपनी संस्कृति को बहुत पहले ही पीछे छोड़ दिया है। जिन सांस्कृतिक मूल्यों पर हमें नाज था । हमारा माथा ऊंचा था। जिस शान और आन-बान से हम जीते थे वह तो अब इतने भौतिक साधनों के उपभोग के बाद भी न जाने कहां छूट गई?

आज हम खुद से ही खुद अलग हो गए हैं।

भीतर झांक कर देखें तो पाते हैं कि हम तो धीरे धीरे रीते होते जा रहे हैं। और बस सुरक्षा के नाम पर स्वार्थ का चोला भी हमने पहन लिया है।

कहां गई वह मधुरता? कहां गई वह शीतलता? कहां खो गयी वह संवेदना? अपनी मधुरता से व्यक्ति स्वयं तो शीतल ही रहता है और दूसरों को भी शीतल रखता है।

शिक्षा का काम तो व्यक्ति को सरल और विरल बनाना था। न कि कठोर और ह्रदय हीन। और न ही संवेदनहीन। बापू ने भी कहा था कि जो शिक्षा हमें संवेदनहीन, और मूल्य हीन बनाए वह शिक्षा, शिक्षा नहीं है।

जहां हम आज हिंदू- मुस्लिम एकता के गीत गाते थे। वहां आज सांप्रदायिकता के दंगे हो रहे हैं। तो कहीं लोग पेट भर भोजन मिलने को भी तरस रहे हैं। लेकिन तू-तू मैं-मैं के झगड़े समाप्त होने का नाम ही नहीं ले रहे हैं?

एक ओर बड़ी-बड़ी सरकारी योजनाएं। दूसरी ओर अन्नदाता कहे जाने वाले किसानों, मजदूरों को जीने की मजबूर परिस्थितियों में लाकर खड़ा कर दिया है। देश का हर कृषक घोर अन्याय का शिकार हो रहा है। मजदूरों के हालात तो और भी भयंकर हो गए हैं।



बहुत सारे सवालों से मन विषाद से भर गया है। चारों ओर कोरोना की महामारी के साथ-साथ स्वार्थ की महामारी का संकट सामने चुनौती बन गया है। सवाल यह भी है कि हमारी शिक्षा इन सब चुनौतियां का सामना कैसे करती है? और अब तो देखने की बात यह भी है कि नई शिक्षा नीति इन चुनौतियों का सामना करने में कितनी समर्थ है? ❑ **-प्रेम गुप्ता**



मुरारीलाल थानवी

❑

अरविंद ओझा स्वैच्छिक सेवाभाव की अनूठी मिसाल थे। वे एक ऐसे सखा थे जो सबके प्रिय थे। उनका जीवन सादगी से भरा था। वे अपने काम के प्रति जीवन भर समर्पित रहे। हमेशा हंसते मुस्कुराते रहते थे। उदासी उनके आस–पास भी नहीं थी। कभी उन्हें नाराज होते नहीं देखा। उनके पास हर समस्या का समाधान होता था। कठिन से कठिन बात को भी वे सरलता से प्रस्तुत कर देते थे। अत्यंत ही विलक्षण व्यक्तित्व था उनका। उनके जाने से जो स्वैच्छिक क्षेत्र में रिक्तता आई है उसे भरना बहुत मुश्किल लगता है।

अरविंद जी का यूं चले जाना सभी साथियों को स्तम्भित कर गया है। प्रस्तुत लेख में मुरारी लाल थानवी ने उनके साथ की स्मृतियों को साझा किया है। सं. ❑

सरोकारों के हमसफर : अरविन्द ओझा

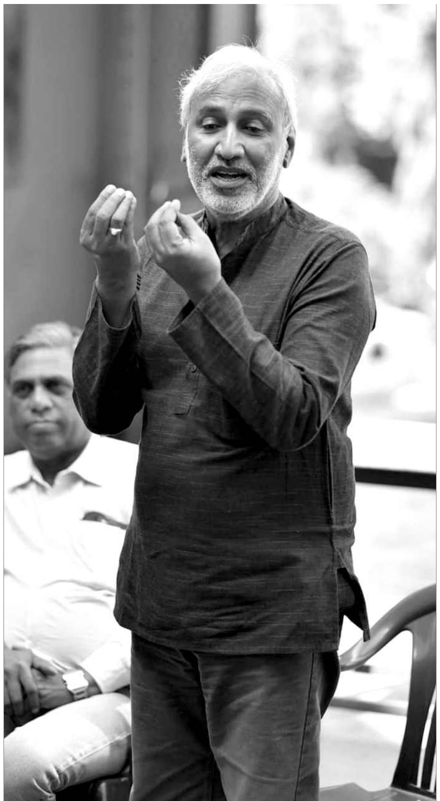
❑

देश में बहुत दूर–दूर बसे गांवों के लोगों, स्वैच्छिक संस्थाओं और सरकार में शिक्षा, स्वास्थ्य व विकास के प्रति रुचि रखने वाले अधिकारियों के लिए **अरविंद ओझा** एक बहुत पहचाना सा नाम हो गया था। वे सभी से हंसते–मुस्कुराते गर्मजोशी के साथ ही मिलते थे। उन्होंने सभी को सदैव प्यार दिया। प्रेम, मिठास और खुशियों के रंग बिखेरते अरविंद ओझा नवंबर २०२० की ७ तारीख को अनंत में कहीं खो गए। लेकिन उनकी मुस्कुराती यादें बज्जू, लूणकरणसर, फलोदी, पोकरण, झाड़ेली, ओसियां, बाड़मेर, जयपुर आदि देश के कई गांवों–शहरों में और दुनिया के अनेक देशों के लोगों के दिलो–दिमाग में तैर रही हैं।

अरविंद जी के काम से जुड़े रिश्तों का दायरा केवल उरमूल ट्रस्ट या उससे संबंधित संस्थाओं तक ही सीमित नहीं था। शिक्षा, बाल अधिकारों तथा महिला विकास जैसे अनेक विषयों से सम्बंधित नेटर्वक से जुड़े थे। विशेष रूप से बाल–विवाह के विषय पर बने अंतराष्ट्रीय नेटर्वक गर्ल्स नॉट ब्राईड (जीएनबी) में बहुत सक्रिय भूमिका निभा रहे थे। **वे उरमूल सीमांत समिति के अध्यक्ष** तथा **राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति, जयपुर के सचिव भी थे।** पिछले दिनों हुई वर्चुअल शोक–सभा में भारत के और अमेरिका, इंग्लैंड, फ्रांस, पाकिस्तान, बांग्लादेश, इथोपिया, युगांडा, नेपाल, रूस, नीदरलैंड, नार्वेआदि देशों के विभिन्न संगठनों से जुड़े व्यक्तियों ने अरविंद जी को एक बेहतरीन मित्र के रूप में बहुत भावुक हो कर याद किया। सच में, उन्होंने इस जहान में हजारों मित्र बनाये।

अरविंद ओझा से कोई भी नया व्यक्ति मिलता तो तुरंत कहते– नमस्ते, मेरा नाम अरविंद है और आपका? पलक झपकते ही अनजान–पहचान का भेद खत्म!

अरविंद जी के इस सहज स्वभाव ने सैकड़ों नौजवानों को दूर–दराज के गांवों में काम करने के लिए प्रेरित किया। नौजवान जुड़ते थे



अरविंद जी ने मुझे **फलोदी** में उरमूल मरुस्थली बुनकर विकास समिति के साथ शिक्षा संबंधी कार्य शुरू करने की जिम्मेदारी दी और फिर लगातार जिम्मेदारियां लेने के लिए प्रेरित करते रहे। तीन दशक से अधिक समय तक रही संगत में मैंने उनको कभी उदास या नाराज होते नहीं देखा। हमेशा हंसते और मुस्कुराते ही रहते थे। वे कभी अपने लिए फिक्रमंद दिखे नहीं, फिक्र को जैसे धुआं समझ उड़ा देते थे। कोई समस्या रखते तो उलट पूछ लेते– इसमें क्या दिक्कत है? समाधान यूं बताते कि हम समस्या भूल आगे बढ़ जाते। ❑

रोजगार के लिए लेकिन जल्दी ही उनमें नौकरी की भावना सेवा की जगह ले लेती थी। वे अपने स्वभाव से लोगों में पिछड़े लोगों के साथ कार्य करने की स्वैच्छिक भावना जगाते थे। यह भावना बहुत जरूरी थी, क्योंकि उरमूल ने सर्वाधिक पिछड़े एवं दूरस्थ गांवों को काम के लिए चुना था। इन क्षेत्रों के लोगों की सबसे बड़ी जरूरत स्वास्थ्य एवं शिक्षा थी।

अरविंद जी और उनसे जुड़े लोग गांवों में कैसे काम करते हैं? यह देखने-समझने के लिए वे मुझे भी १९८८ से प्रेरित करने लगे थे। जब भी मिलना होता, कहते– एक बार चल कर देखो तो सही! साथ ही पूछ लेते–कब चलेंगे? आखिरकार उनके इस सवाल का उत्तर एक दिन तो 'हां' में होना ही था। सो, पहली बार **लूणकरणसर** के **बामनवाली** गांव के पास रेतीले धोरों के बीच बसा एक गांव देखा। उनकी पत्नी **सुशीला जी** ले कर गई थीं। यहां शिक्षाकर्मी स्कूल शुरू हुआ था। फिर **बज्जू** के **छीला काश्मीर** जाने का मौका मिला।

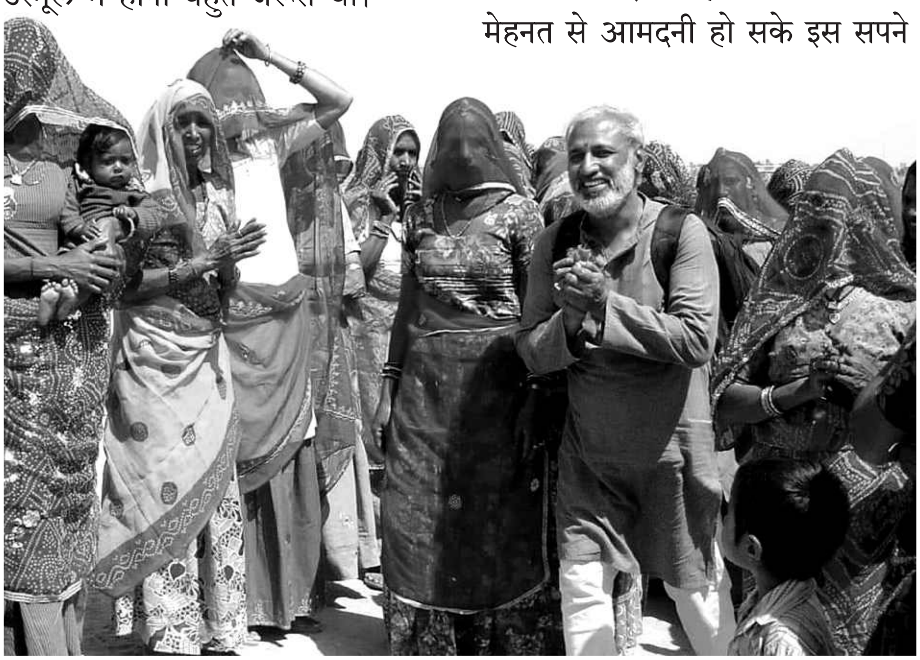
छीला काश्मीर गांव में मैंने भी तय कर लिया कि मुझे इसी तरह के काम से जुड़ना है। इसी दौरान **संजय घोष, सुशीला ओझा, कैलाश भारद्वाज** आदि ने भी मुझे बहुत प्रोत्साहित किया। वर्ष १९९१ में **संजय जी** व **अरविंद जी** ने मुझे **फलोदी** में उरमूल मरुस्थली बुनकर विकास समिति के साथ शिक्षा संबंधी कार्य शुरू करने की जिम्मेदारी दी और फिर लगातार जिम्मेदारियां लेने के लिए प्रेरित करते रहे। तीन दशक से अधिक समय तक रही संगत में मैंने उनको कभी उदास या नाराज होते नहीं देखा। हमेशा हंसते और मुस्कुराते ही रहते थे। वे कभी अपने लिए फिक्रमंद दिखे नहीं, फिक्र को जैसे धुआं समझ उड़ा देते थे। कोई समस्या रखते तो उलट पूछ लेते– इसमें क्या दिक्कत है? समाधान यूं बताते कि हम समस्या भूल आगे बढ़ जाते। लेकिन वे हर कार्यकर्ता का खयाल रखते थे, उनके स्वास्थ्य की परवाह करते थे। इसीलिए मुश्किल हालातों में भी लोगों ने उनके साथ लंबे समय तक काम किया।

उरमूल से मेरे जैसे कई कार्यकर्ता जुड़े। यहां साधारण सा व्यक्ति आत्मीयता एवं सम्मान पाकर आत्मसम्मान से जीने वाला कार्यकर्ता बन जाता है। ऐसी ही एक कार्यकर्ता **दमयंती** बताती हैं कि एक बार मेरी डेढ़ बरस की बेटी **सोनू** रोए जा रही थी, उसे चुप कराने के लाख जतन किये। लेकिन वह रोती ही रही। मैं परेशान हो गई। इतने में **अरविंद जी** आ गए। उन्होंने बिलखती **सोनू** को गोद में उठाया और चले गए। काफी देर बाद सोनू को लेकर वापस आये तो सोनू खिलखिला रही थी। **अरविंद जी सोनू** को गोद में लिए बज्जू के लंबे-चौड़े कैम्पस के तीन चक्कर लगा कर लौटे थे। **सोनू** को हंसती देख **दमयंती** की आंखों में आंसू आ गए। पच्चीस बरस साथ रह कर काम करने वाली **दमयंती अरविंद जी** के

चले जाने के बाद से बहुत दुखी है। पति के देहांत के बाद **अरविंद जी** ने उन्हें संबल दिया। अजमेर से चार छोटी-छोटी बेटियों को साथ लेकर १९९६ में बज्जू आई **दमयंती** यहीं की हो कर रह गई।

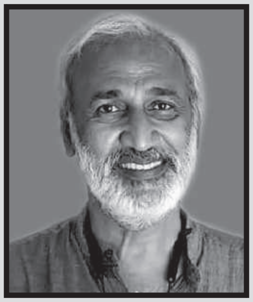
अरविंद जी ने कई गांवों में काम करने की जिम्मेदारी दी, उसे बखूबी निभाया। कोरोना-काल में गरीबों के लिए आटा इकट्ठा करने की चुनौती दी, उसे भी पूरा किया। आज **दमयंती** की चारों बेटियों का विवाह हो चुका है। **दमयंती** बहुत खुश है। उसका मानना है कि अरविंद जी ने हौसला दिया उसी की बदौलत मैंने खुशियां पाई हैं। दमयंती जैसी सैकड़ों महिलाओं को न केवल काम करने के अवसर दिए बल्कि इतना प्रोत्साहित किया व आत्मीयता दी कि वे कई वर्षों से दूरस्थ ग्रामीण क्षेत्रों में काम कर रही हैं।

दमयंती जैसी महिलाओं का उरमूल में होना बहुत जरूरी था। क्योंकि **अरविंद जी** के नेतृत्व में उरमूल ने बज्जू क्षेत्र में महिलाओं को मजबूत करने का सपना संजोया था। इसके लिए महिलाओं के स्वास्थ्य की परवाह करने वाले स्वास्थ्यकर्मी योजना को लागू करने में बहुत मेहनत की। करीब सौ से अधिक ग्रामीण महिलाओं को स्वास्थ्यकर्मी के रूप में प्रशिक्षित किया गया। इनमें पाकिस्तान बॉर्डर से लगते गांवों की महिलाएं भी थीं। इस चुनौतीपूर्ण कार्य को सफल बनाने में महिला कार्यकर्ताओं का बड़ा योगदान रहा। समाज के सरोकारों से जुड़कर काम करने वाले **अरविंद जी** और उनकी टीम को एक समय ऐसा लगा कि इन ग्रामीण महिलाओं को स्वावलम्बी भी होना बहुत जरूरी है। इसलिए स्थानीय कशीदाकारी के हुनर को अंतर्राष्ट्रीय बाजार की दृष्टि से तराशा गया। प्रशिक्षण के लिए महिलाओं को गांव से बाहर लाना चुनौतीपूर्ण था। लेकिन इन महिलाओं को अपनी मेहनत से आमदनी हो सके इस सपने



दमयंती जैसी महिलाओं का उरमूल में होना बहुत जरूरी था। क्योंकि **अरविंद जी** के नेतृत्व में उरमूल ने बज्जू क्षेत्र में महिलाओं को मजबूत करने का सपना संजोया था। इसके लिए महिलाओं के स्वास्थ्य की परवाह करने वाले स्वास्थ्यकर्मी योजना को लागू करने में बहुत मेहनत की। करीब सौ से अधिक ग्रामीण महिलाओं को स्वास्थ्यकर्मी के रूप में प्रशिक्षित किया गया। इनमें पाकिस्तान बॉर्डर से लगते गांवों की महिलाएं भी थीं। इस चुनौतीपूर्ण कार्य को सफल बनाने में महिला कार्यकर्ताओं का बड़ा योगदान रहा। समाज के सरोकारों से जुड़कर काम करने वाले **अरविंद जी** और उनकी टीम को एक समय ऐसा लगा कि इन ग्रामीण महिलाओं को स्वावलम्बी भी होना बहुत जरूरी है। इसलिए स्थानीय कशीदाकारी के हुनर को अंतर्राष्ट्रीय बाजार की दृष्टि से तराशा गया। प्रशिक्षण के लिए महिलाओं को गांव से बाहर लाना चुनौतीपूर्ण था। लेकिन इन महिलाओं को अपनी मेहनत से आमदनी हो सके इस सपने को भी पूरा किया गया।

❑



राजू ने बताया– मैं बाहर से ही लौट रहा था, **अरविंद जी** ने पूछा– चाय पी कर नहीं जाओगे? मैंने कहा– अब रात होने को है! वे हर बार की तरह बोले– अरे अभी कहां रात हुई है! वे इतना प्रेम से आग्रह करते थे कि उसे टालना किसी के लिए संभव नहीं होता था। उन्होंने खुद मुझे चाय बना कर पिलाई। उन्होंने मुझे कभी भी ड्राइवर होने का अहसास नहीं होने दिया बल्कि मुझे कार्यकर्ता बनाया, फिर मुझे संकुल प्रभारी की जिम्मेदारी सौंप दी। मेरे साथ परिवार के सदस्य की तरह बराबरी का बरताव किया। **राजू** बात करते–करते यादों में खो जाते हैं और कहते हैं– उनके जाने के बाद सोचता हूं कि शायद उन्होंने अपने बच्चों से ज्यादा समय मेरे साथ बिताया होगा! इस दौरान कभी भी मैंने उनको किसी के भी साथ किसी भी तरह का भेदभाव करते, छोटे–बड़े में फर्क करते या किसी की बुराई करते नहीं देखा। ❑

को भी पूरा किया गया। **उरमूल सीमांत समिति, बज्जू** के **सचिव सुनील लहरी** के अनुसार आज करीब ११०० से अधिक ग्रामीण महिलाएं आयअर्जन के कार्यक्रम से जुड़ी हुई हैं। इन हुनरमंद महिलाओं को ३००० से १२००० तक मासिक मेहताना अर्जित हो जाता है। अनेक महिलाओं को राष्ट्रीय–अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अपनी कला को प्रदर्शित करने का अवसर भी मिला है।

करीब छब्बीस बरस तक **अरविंद जी** के साथ रहे **राजू** अभी तक अवसाद में हैं। **अरविंद जी** के बीमार होने से कुछ दिन पहले रात साढ़े आठ बजे **राजू** का **अरविंद जी** के घर जाना हुआ। **राजू** ने बताया– मैं बाहर से ही लौट रहा था, **अरविंद जी** ने पूछा– चाय पी कर नहीं जाओगे? मैंने कहा– अब रात होने को है! वे हर बार की तरह बोले– अरे अभी कहां रात हुई है! वे इतना प्रेम से आग्रह करते थे कि उसे टालना किसी के लिए संभव नहीं होता था। उन्होंने खुद मुझे चाय बना कर पिलाई। उन्होंने मुझे कभी भी ड्राइवर होने का अहसास नहीं होने दिया बल्कि मुझे कार्यकर्ता बनाया, फिर मुझे संकुल प्रभारी की जिम्मेदारी सौंप दी। मेरे साथ परिवार के सदस्य की तरह बराबरी का बरताव किया। **राजू** बात करते–करते यादों में खो जाते हैं और कहते हैं– उनके जाने के बाद सोचता हूं कि शायद उन्होंने अपने बच्चों से ज्यादा समय मेरे साथ बिताया होगा! इस दौरान कभी भी मैंने उनको किसी के भी साथ किसी भी तरह का भेदभाव करते, छोटे–बड़े में फर्क करते या किसी की बुराई करते नहीं देखा।

अरविंद जी के नेतृत्व में स्कूली बच्चों व आम ग्रामीणों की आवाज को मुखर करने के लिए विशेष प्रयास किये गये। थियेटर जैसी विधा का बेहतरीन प्रयोग **उरमूल संस्था** में किया गया। इसके लिए सुदूर गांव स्तर पर नाट्य कार्यशालाओं का आयोजन किया गया। मुझे एक नाट्य कार्यशाला को नजदीक से देखने का अवसर मिला। १९९१ में पाकिस्तान बॉर्डर के निकटवर्ती गांव **छीला काश्मीर** के बच्चों के साथ प्रसिद्ध रंगकर्मी **कैलाश भारद्वाज** और संगीतज्ञ **पुण्डरीक जोशी** १० दिन से नाट्य कार्यशाला कर रहे थे। इस कार्यशाला में **विजय तेंदुलकर** के लिखे नाटक **'पसीना–पसीना'** को खेलने की तैयारी चल रही थी। दस दिन की कार्यशाला के बाद ५ दिन तक शो हुवे। ना बिजली ना पानी, चारों ओर रेतीले टीबों के पहाड़! तैयारी के वक्त जरूरत पड़े तो जीप की लाइट! तैयार किये गए नाटक **'पसीना–पसीना'** का शो देर शाम शुरू हुआ। दूर रखे जनरेटर की मामूली आवाज के साथ पीली, लाल, हरी बत्तियां अपना काम करने लगी। और ग्रामीण बच्चों का नाटक शुरू। मैंने महसूस किया कि– बच्चों के शानदार अभिनय को देख ग्रामीण अपनी पीठ पीछे छिपे पिछड़ेपन के घुप अंधेरे को जैसे थोड़ी देर के लिए भूल गए थे।

दस दिन की कार्यशाला के दौरान संस्था के कार्यकर्ताओं और ग्रामीणों ने एक-दूसरे को गहराई से जान लिया था कि संस्था क्या करना चाहती है और गांव के लोगों की प्राथमिकताएं क्या हैं! कितना प्रभावशाली तरीका था यह गांव के लोगों के साथ जुड़ाव का!

दरअसल **अरविंद जी** एक शिक्षाकर्मी थे। वे हर समस्या के समाधान को शैक्षिक तरीकों से सोचते थे। उनका विश्वास था कि पढ़ाई-लिखाई के साथ-साथ समाज की शिक्षा होते रहना भी जरूरी है। लोक-शिक्षा के लिए उन्होंने थियेटर को प्रभावी माना। इसलिए १९८६-८७ के दौरान **अरविंद जी** अपने रंगकर्मी मित्र **कैलाश भारद्वाज** के साथ होती चर्चाओं में यह सवाल उठाते थे कि थियेटर शहरी रंगमंच तक सीमित क्यों? नाट्यकला कैसे लोक-शिक्षा का प्रभावी माध्यम बन सकती है? इन चर्चाओं ने **कैलाश जी** को चिंतन के लिए मजबूर कर दिया। चर्चाओं और चिंतन का **कैलाश जी** पर इतना असर हुआ कि वे रेलवे की नौकरी छोड़ **अरविंद जी** के साथ गांवों में काम करने के लिए १९८९ में बीकानेर से सौ किलोमीटर दूर बज्जू गांव में आ बसे। **कैलाश जी** बताते हैं– हमने मिल कर बहुत सारे काम किये। **बज्जू** और **खाजूवाला** क्षेत्र में '**पसीना-पसीना**' नाटक के ३० से अधिक शो हुए। ये सारे शो गांवों में हुए और सभी कलाकार गांवों के बच्चे थे।

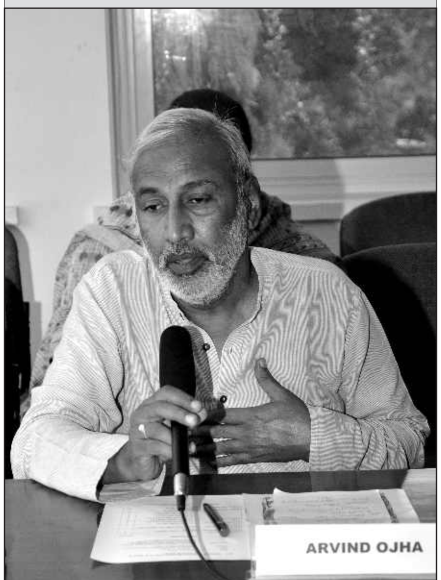
कैलाश जी बताते हैं– गांवों की समस्याओं को हम मिल कर बारीकी से देखते थे, उनको समझने की कोशिश करते थे। इसी दौरान इन समस्याओं को पैदा करने वाले की भी पहचान हो जाती थी। ऐसे लोगों को नाटक में उजागर करते थे ताकि ग्रामीण ऐसे लोगों को समझ सके।

ऐसे ही एक व्यक्ति की पहचान कर हमने उसे '**बाबे रो गांव**' नामक नाटक में विशेष पात्र बनाया था। यह पात्र गांव का एक मात्र पढ़ा-लिखा व्यक्ति है, रोजाना लोगों को अखबार की खबरें पढ़ कर सुनाता है। लेकिन समाचारों के वाचन के बीच-बीच में ऐसी बातें जोड़ देता है जिससे गांव में समुदायों-परिवारों के बीच लड़ने-भिड़ने का भाव जागृत हो जाता है। इस नाटक ने लोगों को बहुत प्रभावित किया क्योंकि उन्हें तुरंत अहसास हो गया कि इस जैसा कोई हमारे बीच में भी है। यही नाटक के कलाकारों और लेखक की सफलता होती है। **अरविंद जी** ने यह नाटक १९८७ में **लूणकरणसर** में लिखा था।

अरविंद जी की यह खासियत थी कि उनका हर काम में जुड़ाव रहता था। वे काम करने वालों को पूरी स्वतंत्रता देते थे। यह स्वतंत्रता केवल प्रोजेक्ट या किसी कार्यक्रम विशेष तक ही सीमित नहीं रही बल्कि उरमूल से जुड़े अनेक वरिष्ठ कार्यकर्ताओं को **संजय घोष** व **अरविंद ओझा** की टीम ने विकेन्द्रीकरण की नीति के तहत



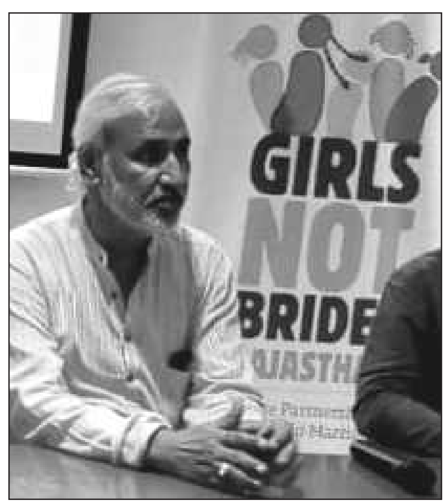
ऐसे ही एक व्यक्ति की पहचान कर हमने उसे '**बाबे रो गांव**' नामक नाटक में विशेष पात्र बनाया था। यह पात्र गांव का एक मात्र पढ़ा-लिखा व्यक्ति है, रोजाना लोगों को अखबार की खबरें पढ़ कर सुनाता है। लेकिन समाचारों के वाचन के बीच-बीच में ऐसी बातें जोड़ देता है जिससे गांव में समुदायों-परिवारों के बीच लड़ने-भिड़ने का भाव जागृत हो जाता है। इस नाटक ने लोगों को बहुत प्रभावित किया क्योंकि उन्हें तुरंत अहसास हो गया कि इस जैसा कोई हमारे बीच में भी है। यही नाटक के कलाकारों और लेखक की सफलता होती है। **अरविंद जी** ने यह नाटक १९८७ में **लूणकरणसर** में लिखा था। ❑



अपने–अपने क्षेत्रों में स्वैच्छिक संस्थाओं के रूप में स्वतंत्र रूप से काम करने के लिए प्रेरित–प्रोत्साहित किया। **लूणकरणसर** (बीकानेर) में **उरमूल सेतु, फलोदी–पोकरण** (जोधपुर) की **उरमूल मरूस्थली बुनकर विकास समिति, नोखा** (बीकानेर) की **उरमूल ज्योति,** झाड़ेली (नागौर) की **खेजड़ी** आदि संस्थाओं की स्थापना में मदद की। **धन्नाराम** कहते हैं कि हमें **अरविंद जी** की कमी बहुत खलेगी क्योंकि जब कभी सरकारी कार्यालयों में कोई समस्या आती तो उसे दूर करने में **अरविंद जी** का बहुत सहयोग रहता।

सरकारी योजनाओं का फायदा अंतिम पायदान पर बैठे व्यक्ति को मिल पा रहा है कि नहीं? नहीं मिलने के क्या कारण हैं? इसके बारे में **अरविंद जी** गहराई से जानकारी रखते थे। जब भी अवसर मिलता वे नीति बनाने वाले अधिकारियों को जमीन की सच्चाई बेहिचक निडर हो कर बताते थे। इसका सकारात्मक असर कई योजनाओं पर पड़ा। उनके इस अंदाज से उनकी एक अलग पहचान भी बनी। शिक्षाकर्मी, लोक जुम्बिश जैसी अनेक सरकारी योजनाओं का उरमूल ने सफल संचालन किया, उनके विस्तार में सहयोग प्रदान किया। महिला एवं बाल विकास कार्यक्रम के तहत पूरे भारत में चलने वाले आंगनवाड़ी केंद्रों की स्थिति अच्छी नहीं थी। राजस्थान सरकार ने पहली बार पूरा ब्लॉक उरमूल जैसी किसी स्वयंसेवी संस्था को संचालन के लिए सौंप दिया। वर्ष १९९१ से २०२० तक उरमूल के पास यह जिम्मेदारी रही। करीब दो दशक तक आंगनवाड़ी परियोजना की जिम्मेदारी संभालने वाले **रामप्रसाद हर्ष** मानते हैं कि २९ बरस तक चले इस सरकारी कार्यक्रम के सफल संचालन में **अरविंद जी** के कुशल नेतृत्व की बड़ी भूमिका थी।

अरविंद जी के काम की कहानी बहुत लम्बी है। जिसे एक आलेख में समेटना मुश्किल है। वे ३० से अधिक वर्षों तक जरूरतमंदो के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य, पर्यावरण आदि मुद्दो पर सोचते रहे, योजनाएं बनाते रहे और उन योजनाओं को जमीन पर उतारने के लिए सहज योगदान देते रहे। जब उन्हें कोरोना जैसी महामारी ने अपनी चपेट में लिया, उसके बावजूद भी उन्होंने अपने आप को काम से अलग नहीं किया। यह सच्चाई कि इस महामारी ने **अरविंद जी** को हमसे सदा के लिए अलग कर दिया। लेकिन उनकी यादें, उनकी बातें हमेशा बनी रहेंगी। ❑



सरकारी योजनाओं का फायदा अंतिम पायदान पर बैठे व्यक्ति को मिल पा रहा है कि नहीं? नहीं मिलने के क्या कारण हैं? इसके बारे में **अरविंद जी** गहराई से जानकारी रखते थे। जब भी अवसर मिलता वे नीति बनाने वाले अधिकारियों को जमीन की सच्चाई बेहिचक निडर हो कर बताते थे। इसका सकारात्मक असर कई योजनाओं पर पड़ा। उनके इस अंदाज से उनकी एक अलग पहचान भी बनी। शिक्षाकर्मी, लोक जुम्बिश जैसी अनेक सरकारी योजनाओं का उरमूल ने सफल संचालन किया, उनके विस्तार में सहयोग प्रदान किया। ❑

ऑनलाइन कक्षाओं से 'आफलाइन' होते आदिवासी बच्चे !



उषा शर्मा

❑

कोरोना ने जीनजीवन को बहुत ही प्रभावित किया है। बच्चों की सुरक्षा को देखते हुए विद्यालय बंद कर दिये गये हैं। इसके कारण बच्चों की शिक्षा पर विशेष प्रभाव पड़ा है। सरकार ने बच्चों की पढ़ाई के लिए इंटरनेट का सहारा लिया है। घर बैठे ही इंटरनेट के माध्यम से ऑनलाइन पढ़ाई कराई जा रही है। यह तरीका कितना कारगर है यह शोध का विषय है। हमारे यहां तो कई समस्याएं हैं। विशेष रूप से आदिवादी क्षेत्रों में तो इस तरह से पढ़ाई कराना बहुत ही कठिन है। मोबाइल फोन की उपलब्धता, नेटवर्क का नहीं मिलना, माता–पिता के पास समय नहीं होना, उनका पढ़ा लिखा नहीं होना आदि जैसी कई समस्याएं हैं। प्रस्तुत आलेख में डॉ उषा शर्मा ऑनलाइन कक्षाओं के संबंध में विश्लेषण कर रही हैं। सं. ❑

कोविड–१९ ने पूरी दुनिया में जिस तरह का माहौल पैदा किया है उससे दुनिया के बच्चे भी नकारात्मक रूप से प्रभावित हुए हैं। लेकिन सभी देश अपने–अपने तरीके से इस महामारी से निपटने का कार्य कुशलता से कर रहे हैं। कोविड–१९ के कारण देश के स्कूल बंद हैं ताकि बच्चे घर पर रह कर सुरक्षित रूप से अपनी पढ़ाई कर सकें। लॉक डाउन के समय में भारत सरकार ने विद्यालय जाने वाले बच्चों के सीखने के लिए शैक्षणिक कैलेंडर जारी किए हैं। लेकिन गांव और जनजातीय/आदिवासी क्षेत्रों में रहने वाले बच्चों की शिक्षा पर मुखर आवाज सुनना शेष है। कोशिश की जा रही है कि इन तक भी अपनी पहुंच बनाई जाए।

भारतीय जनगणना २०११ के अनुसार १०.४३ करोड़ जनसंख्या जनजातीय (ट्राइबल) है और एजुेशनल स्टेटिस्टिक्स एट अ ग्लांस, २०१८ भारत सरकार के अनुसार अनुसूचित जन जाति के स्कूल जाने वाले बच्चों की संख्या २,५३,६८,००० है। ये बच्चे कक्षा १ से १२ तक (६–१७ वर्ष) के हैं जबकि भारत में इस उम्र के कुल २६,०५,९७,००० स्कूल में पढ़ते हैं। इसका मतलब यह है कि लगभग २६ करोड़ बच्चों में से लगभग २ करोड़ बच्चे इन तमाम तरह की ऑनलाइन सुविधाओं से वंचित होंगे। हां, सारे बच्चे नहीं लेकिन फिर भी अधिकांश बच्चे इन सुविधाओं का उपयोग नहीं कर पाते होंगे क्योंकि १०.४३ करोड़ अनुसूचित जनजाति के लोगों में से केवल १०.४३ प्रतिशत ही शहरी क्षेत्रों में रहते हैं यानी ८९.९७ प्रतिशत लोग रूरल क्षेत्रों में रहते हैं। भारतीय जनगणना २०११ के आंकड़े बताते हैं कि अनुसूचित जन जाति के ३३.६ प्रतिशत लोगों को पीने तक का पानी लेने के लिए दूर जाना पड़ता है लगभग २६.६ प्रतिशत लोग नदी, तालाब, झील, खुले हुए कुओं या अन्य स्रोतों से पीने का पानी लेते हैं। केवल ५१.७ प्रतिशत लोगों को बिजली की सुविधा प्राप्त है जबकि अन्य लोग केरोसिन तेल या अन्य साधनों पर निर्भर रहते हैं। अब हम मुद्दे के और भी नजदीक पहुंचते हैं तथा यह जानते हैं कि भारत सरकार ने बच्चों के लिए ऑनलाइन कक्षाओं का आयोजन किया है उसके लिए इन लोगों के पास कोई उपकरण है भी नहीं। केवल ३१.१ प्रतिशत लोगों पास मोबाइल की सुविधा है, वह भी स्मार्ट फोन हो, यह सुनिश्चित नहीं है। लैंड लाइन और मोबाइल–दोनों की सुविधा वाले कुल १.८ प्रतिशत लोग हैं। टेलीविजन केवल २१.९ प्रतिशत लोगों के पास है और कंप्यूटर या लैपटॉप

शेष पृष्ठ १६ पर...



लखनऊ के पास सुबह-सुबह

ललित सुरजन सृजन की स्मृतियां संजोने के लिए यहां उनकी कविताएं दी जा रही हैं।

अभी-अभी
सरसों के खेत से
डुबकी लगाकर निकला है
आम का एक बिरवा,
अभी-अभी
सरसों के फूलों पर
ओस छिड़क कर गई है
डूबती हुई रात,
अभी-अभी
छोटे भाई के साथ
शरारत करती चुप हुई है
एक नन्हीं बिटिया,
अभी-अभी
बूढ़ी अम्मां को सहारा दे
बर्थ तक लाई है
एक हंसमुख बहू,
अभी सुबह की धूप में
रेल लाईन के किनारे
उपले थाप रही है
एक कामकाजी औरत,
अभी सुदूर देश में
अपने नवजात शिशु के लिए
किताब लिख रहा है
एक युद्ध संवाददाता,
अभी मोर्चे से लौट रहा है
वीरता का मैडल लेकर
अपने परिवार के पास
एक सकुशल सिपाही,
अभी मैंने
अवध की शाम
नहीं देखी है,
अभी मैं जग रहा हूं
लखनऊ के पास
अपना पहिला सबेरा,
और खुद को
तैयार कर रहा हूं
एक खुशनुमा दिन के लिए।

06.02.1998

बस्तर: सत्य की कथा



सुबह पांच बजे
पूरनमासी के दिन
बहुत से घरों में जब
शुरू हो गई हो तैयारी
सत्यनारायण की कथा की,
बस्तर के विलुप्त वनों में
डूबते चंद्रमा के सामने
अपने सच होने का बयान
देने के लिए खड़े हैं उदास
भूरे, बदरंग, नीलगिरि के वृक्ष,
सब कुछ सच-सच कहने के लिए
बैठी हैं, बरसों से
थकी-प्यासी चट्टानें
नदियों के निर्जल विस्तार में,
इधर पूरब के आकाश में
क्षिप्र उदित हो रहा है
मई का सूरज,
उधर डूब रहा है
उमस भरी रात का सभापति
चौदहवीं का चंद्रमा
भूरा, बदरंग, निस्तेज
उदास और कुम्हलाया हुआ,
नदी, पहाड़, पेड़ और चांद
नहीं हैं जिनके
सच का सरोकार
सरपट दौड़ रहे हैं
उदीयमान सूरज के साथ।

21.05.2000

अनुसूचित जनजाति के लोगों की साक्षरता दर ५८.९६ प्रतिशत है जबकि भारत की साक्षरता दर ७२.९९ प्रतिशत है। लगभग ४७ प्रतिशत लोग निरक्षर हैं और प्राथमिक स्तर तक पढ़े लिखे लोगों का प्रतिशत २४.२ है और माध्यमिक स्तर तक की पढ़ाई लिखाई करने वाले केवल १४.३ प्रतिशत लोग हैं। सैकेण्डरी का आंकड़ा ८.४ प्रतिशत है और हायर सैकेंडरी का आंकड़ा ४.२ प्रतिशत है तथा किसी तरह का डिप्लोमा, सर्टिफिकेट वाले लोग केवल ०.४ प्रतिशत हैं और ग्रेजुएट का प्रतिशत १.६ प्रतिशत है।

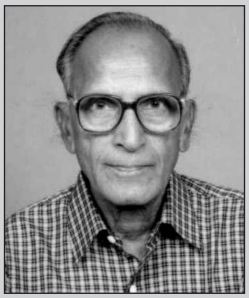
पृष्ठ १३ से आगे...

केवल ४.४ प्रतिशत लोगों के पास है। इससे भी ज्यादा चौंकाने वाले आंकड़े यह हैं कि ३७.३ प्रतिशत लोगों के पास इनमें से किसी भी प्रकार की कोई सुविधा नहीं है। अब क्या करेंगे ये बच्चे? एक और बात संज्ञान में हो कि ऑनलाइन या मीडिया के माध्यम से सीखने के लिए माता-पिता के सहयोग की भी अपेक्षा की गयी है।

इसका मतलब यह है कि बच्चे के माता-पिता अपने बच्चों को उन दिशा-निर्देशों के अनुसार पढ़ाएंगे। बच्चे के सीखने में मदद करेंगे। ये दिशा निर्देश भी समाज के केवल एक ही वर्ग को संबोधित करते हैं। उन बच्चों का क्या जिनके माता-पिता निरक्षर हैं? या फिर वे 'आज की पढ़ाई-लिखाई' से परिचित नहीं है, या फिर वे इस लॉक डाउन में 'दो वक्त की रोटी' का जुगाड़ करने में चिंतित रहते हैं, या काम और भोजन की तलाश में रहते हैं। अनुसूचित जनजाति के लोगों की साक्षरता दर ५८.९६ प्रतिशत है जबकि भारत की साक्षरता दर ७२.९९ प्रतिशत है। लगभग ४७ प्रतिशत लोग निरक्षर हैं और प्राथमिक स्तर तक पढ़े लिखे लोगों का प्रतिशत २४.२ है और माध्यमिक स्तर तक की पढ़ाई लिखाई करने वाले केवल १४.३ प्रतिशत लोग हैं। सैकेण्डरी का आंकड़ा ८.४ प्रतिशत है और हायर सैकेंडरी का आंकड़ा ४.२ प्रतिशत है तथा किसी तरह का डिप्लोमा, सर्टिफिकेट वाले लोग केवल ०.४ प्रतिशत हैं और ग्रेजुएट का प्रतिशत १.६ प्रतिशत है। अब आप स्वयं तय कीजिए कि कितने माता-पिता अपने बच्चों को पढ़ने-लिखने में मदद कर सकेंगे? हम सरल क्षेत्रों को भी जितना सरल समझ रहे हैं, वे दरअसल उतने सरल नहीं हैं। शहर के सरल क्षेत्र और आदिवासी क्षेत्रों में जमीन आसमान का अंतर है। मीलों बीहड़, जंगल और दूर-दूर तक कोई बस्ती भी नहीं है। सोचिये, ऐसे हालातों में रहने वाले लोग कहां, कैसे और कितना अपने बच्चों की पढ़ाई पर ध्यान दे पाएंगे? वे तो स्कूल के 'मास्टर जी' पर ही निर्भर थे और अब 'मास्टर जी' भी खुद लॉक डालन में 'लॉक्ड' हैं। भारत जैसे विविधता भरे देश में एक 'दिशा-निर्देश' से सभी को दिशा नहीं मिल पाएगी। जरूरत इस बात की है कि सभी राज्य अपने भूगोल, समाज के सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य को ध्यान में रखते हुए दिशा-निर्देश तय करें ताकि सभी बच्चों को उसका लाभ मिल सके।

अनुभव बताते हैं कि 'एक व्यवस्था' केवल 'अव्यवस्था' ही फैला सकती है। अत: सभी को मिलकर अपने-अपने हिस्से के दायित्व पूरे करने होंगे और यह सोचना होगा कि इन आदिवासी बच्चों तक शिक्षा की पहुंच कैसे बनाई जाए। यह अवसर है अपनी शिक्षा की व्यवस्था और उसके तौर तरीकों के बारे में विचार करने और उन तौर तरीकों को 'दुरुस्त' करने का। जो लोग दुर्गम इलाकों में रहते हैं उन तक 'सिग्नल' का मिलना भी समस्या है। कहीं किसी टीले पर खड़े होंगे और वह भी किसी खास एंगल बनाकर तो सिग्नल मिलेगा अन्यथा नहीं। सोचिये, 'बच्चे कहां खड़े होंगे ? इन स्थितियों को देखकर यही समझ में आता है कि समावेशी शिक्षा को केवल 'बात करने' के कारण कहीं इस देश के बहुत सारे बच्चों को इस शिक्षा व्यवस्था से बाहर 'खदेड़ते' तो नहीं चले जा रहे ? शिक्षा और शिक्षा की व्यवस्था पर पुनर्विचार अत्यंत आवश्यक है। अंतत: शिक्षा का अधिकार हर बच्चे का मौलिक अधिकार है...। आदिवासी जन जातीय बच्चों का भी। कभी इनके पैमाने से भी दुनिया को देखा जाना चाहिए। ❑

एनसीईआरटी, नयी दिल्ली



आर.सी. भंडारी
❑

आज आधुनिक युग में भी मनुष्य अपने को अंधविश्वास से मुक्त नहीं कर पाया है। शकुन अपशकुन के चक्कर में पड़कर वह अपने आत्म विश्वास और मनोबल से कमजोर होने लगता है। इसी से वह अंधविश्वास का शिकार हो जाता है। तेरह (१३) के अंक को अशुभ माना जाता है। जबकि यह अंक गणित की गिनती का ही एक अंक है। इस अंक पर तो कई मुहावरे तक बन गये हैं। प्रस्तुत लेख में आर.सी. भण्डारी अंक तेरह का विश्लेषण कर रहे हैं। सं.❑

अंक तीन तेरह

वर्तमान युग में विज्ञान, टेक्नोलोजी, कंप्यूटर, कृत्रिम बुद्धिमता आदि ने मनुष्य को विकास के चौराहे पर लाकर खड़ा कर दिया है। ज्ञान भी विस्फोटक होता जा रहा है। इतना होते हुए, फिर भी, मनुष्य के व्यावहारिक रोजमर्रा के जीवन में अंधविश्वास अंक ऐसी विधा है जिसकी काट आज तक नहीं मिल पायी है। अंध विश्वास से मनुष्य स्वयं को मुक्त नहीं कर पाया है। शकुन-अपशकुन के चक्कर में पड़कर मनुष्य अपने आत्म विश्वास और मनोबल से कमजोर होने लगता है और तब वह अंध विश्वास का शिकार हो जाता है। तेरह (१३) के अंक से मनुष्य का जीवन और उसकी सोच किसी न किसी तरह से प्रभावित होती है, जिसका संकेत इन दो मुहावरों से मिलता है। पहला है, 'नौ नगद न तेरह उधार' यानि प्रत्यक्ष में लाभ (नौ नगद) हो हरा हो तो अप्रत्यक्ष लाभ (तेरह उधार) के पीछे भागना मूर्खता है। और दूसरा मुहावरा है ' न तीन में और न तेरह में' यानि न इधर के न उधर के', किसी काम के नहीं। इससे किसी व्यक्ति के नाकारेपन का बखान होता है। विभिन्न दृष्टिकोणों से, अतएव, तेरह को परखने का यहां प्रयास किया गया है।

विश्व के प्रत्येक धर्म, मजहब, सम्प्रदाय आदि में अंध विश्वासी व्यक्ति होते हैं। (कुछ अपवाद हो सकते हैं)। पश्चिमी देशों में विशेषकर, ईसाइयों ने प्राचीन काल से ही तेरह (१३) के अंक को अशुभ माना है। इसका मुख्य कारण जीसस क्राईस्ट (ईसा मसीहा) के जीवन से जुड़ा एक प्रसंग है। क्राईस्ट के एक रात्री भोज में तेरह व्यक्ति थे और संयोगवश तेरहवां व्यक्ति तेरह नंबर की कुर्सी पर बैठा था। और इसी तेरहवें व्यक्ति ने क्राईस्ट के साथ घोर विश्वासघात किया था।

इस घटना से ईसाइयों ने यह मान लिया कि तेहर का अंक बड़ा मनहूस है। लोगों के मन में डर बैठ गया जो उनके जीवन में कहीं न कहीं झलकने लगा। जैसे कि बहुमंजिले भवनों तेरहवीं मंजिल होती तो थी परन्तु उसको तेरह (१३) नंबर से नहीं दर्शाया जाता। ऐसा ही कुछ आवासीय होटलों की मंजिलों और कमरों की संख्या के साथ भी होता। मंजील हो या कमरे, दोनों के क्रमांकों में बारह (१२) के बाद चौदह (१४) का अंक काम में लिया जाता। कुछ रेस्टोरेंट और अन्य खाने-पीने के स्थानों पर भी यदि

बापू का शिक्षा संदेश

एक अहिंसक समाज के लिए अहिंसक स्वावलम्बी व्यक्ति का निर्माण– गांधीजी का संपूर्ण शिक्षा–दर्शन इसी उद्देश्य चिन्तन, अनुभूति और कर्म में एक अहिंसक व्यक्ति का निर्माण करना है। सामान्यत:, बुनियादी शिक्षा को लर्निंग बाइ डूइंग या कर के सीखो तक सीमित कर उसे कुछ दस्तकारियों आदि की शिक्षा मान लिया जाता है। निश्चय ही वह आजीविका–कौशल की भी शिक्षा है– जो हर शिक्षा–पद्धति को निश्चय ही होना चाहिए– लेकिन उस का वास्तविक उद्देश्य एक ऐसे स्वावलम्बी व्यक्ति का निर्माण करना है जिस का अपने संपूर्ण परिवेश के साथ– प्राकृतिक और मानवीय, दोनों तरह के परिवेश के साथ– अहिंसात्मक और सर्जनात्मक रिश्ता हो। गांधीजी की शिक्षा–प्रक्रिया का उद्देश्य आत्मनिर्भर व्यक्ति का विकास है, अत: यह जरूरी है कि उस की प्रक्रिया भी आत्मनिर्भर हो अर्थात् शिक्षार्थी की शिक्षा का व्यय–भार वह स्वयं उठा सके। साधन और साध्य यदि एक हैं तो आत्मनिर्भर व्यक्ति और समाज का साध्य निश्चित करने वाली शिक्षा को अपनी प्रक्रिया में भी अहिंसक और आत्मनिर्भर होना होगा। ❑

–नन्दकिशोर आचार्य

टेबलों को नम्बरित किया जाता तो तेरह नम्बर की टेबिल गायब होती थी। फ्रांस के लोगों में तेरह का इतना डर रहता कि वे अपने घरों में खाने के लिए तेरह कुर्सियां नहीं रखते और इसीलिए खाने पर कभी तेरह मेहमानों को आमंत्रित नहीं करते।

यदि किसी महिने की तारीख तेरह (१३) का दिन शुक्रवार होता है तो वह दिन अत्यन्त ही बद किस्मती वाला माना जाता है क्योंकि जीसस क्राईस्ट को शुक्रवार को सूली पर चढ़ाया गया था। शुक्रवार का दिन इसलिए अशुभ माना जाता है। अप्रेल महीने के ईस्टर वाले रविवार के पहले आने वाला शुक्रवार गुड फ्राइडे कहलाता है जब जीसस को सूली पर चढ़ाने को याद किया जाता है। इस प्रकार शुक्रवार का दिन और तेरह का अंक दोनों ने ईसाईयों को भयभीत कर रखा है। जब कभी भी शुक्रवार के साथ तेरह का संयोग हो जाता है तो उस रोज कोई नया काम शुरू नहीं करते। कुछ लोग तो ऐसे दिन अपना कारोबार ही बंद रखते हैं।

भारत में भी तेरह के डर से लोग अछूते नहीं रह सकते हैं। जैसे केरल प्रदेश की प्रारंभ में निर्मित हाई कोर्ट का भवन और बम्बई (अब मुम्बई) की स्टॉक ऐक्सचेंज का भवन दोनों बहुमंजीले हैं और दोनों भवनों में तेरहवीं तो है परन्तु उसे तेरह के अंक से दर्शाया नहीं गया है। शायद दोनों भवनों के वास्तुकार विदेशी रहे होंगे जिनके मन में तेरह का भय रहा होगा।

भारत का आधुनिक कहा जाने वाले शहर चंडीगढ़ में शायद सेक्टर तेरहवां (१३) नहीं है। इस शहर के वास्तुकार विख्यात फ्रांसीसी ले कर बूजे थे। आजकल भारत में बहुमंजिलें भवन बहुत बड़ी संख्या में बनने लगे हैं। इनके निर्माताओं में जो कोई भी तरेह के डर से ग्रस्त होता है वह भवन में तेरहवीं मंजिल को अंक के हिसाब से गायब रखता है। कहीं कहीं तेरहवीं मंजिल को (१२ए) से दिखा देते हैं।

पौराणिक मान्यताओं के अनुसार भारत में हिन्दू कैलेण्डर (चन्द्र कैलेण्डर) के महिनों की तेरहवीं तिथि (१३) को प्रदोष के रूप में शिवजी को अर्पित मानी जाती है और प्रदोष के दिन हिन्दू समाज के कई लोग व्रत उपवास रख कर भगवान शिव की पूजा–अर्चना करते हैं। पारिवारिक सुख–शांति और समृद्धि की प्रार्थना करते हैं। इसे त्रयोदशी (तेरस) की शिवरात्री भी कहते हैं। महाशिवरात्री माघ महिने के शुक्ल पक्ष की तेरस (१३) को विश्वभर में शिव भक्त बड़े आनन्द और उल्लास के साथ मनाते हैं और शिवजी की पूजा पूरी श्रद्धा और निष्ठा से करते हैं।

जैन धर्मावलम्बियों के चौबीसवें (२४) तीर्थंकर भगवान महावीर का जन्म चैत्र शुक्ल त्रयोदशी (तेरस) को हुआ था और यह दिन महावीर जयंती के नाम से जाना जाता है। जैन लोग प्रतिवर्ष महावीर जयन्ती को बड़े हर्षोल्लास के साथ मनाते हैं। महावीर के संदेशों को सारे विश्व में मान्यता मिल गयी है। पर्यावरण

संतुलन के लिए महावीर के मंत्र 'जियो और जीने दो' आज भी आवश्यक रूप से प्रासंगिक हैं।

तेरह के अंक से संबंधित सिक्खों के गुरु नानक देव के जीवन का एक रोचक प्रसंग है।

नानक बचपन से ही साधु संतों का सत्संग और ईश्वर की भक्ति में लगे रहते थे। नानक को अपनी बहिन के यहां सुल्तानपुर भेज दिया गया जहां नवाब के रसदघर में मुंशी लगवा दिया। रसदघर से लोगों को अनाज और अन्य सामान देने की गिनती करते समय एक दो तीन से लेकर दस ग्यारह बारह के बाद जैसे ही नानक के तेरा निकला गिनती बंद और तेरा तेरा बोलने लगे और कहने लगे भगवान सब कुछ तेरा ही है, तू ही सब कुछ है और इस प्रकार नानक घोर ईश्वरवादी हो गये। नानक से गुरु नानक देव कहलाने लगे। तेरह (१३) शब्द बोलचाल में तेरा की तरह ही उच्चारित होता है। इसलिए तेरह का अंक, तेरा के रूप में, नानक के जीवन के लिए महत्वपूर्ण बन गया। सिक्ख लोग अतएव, तेरह को बड़ा पवित्र और शुभ मानते हैं।

भारत के पूर्व प्रधानमंत्री स्वर्गीय अटल बिहारी वाजपेयी के प्रधानमंत्री काल में तेरह का संयोग उनके दिलो-दिमाग पर छा गया था। पहले प्रधानमंत्री काल की सरकार तेरह दिन ही चल पायी। फिर चुनाव के लिए पर्चा तेरह तारीख को भरा था। चुनाव जीतने पर प्रधानमंत्री बने तो सरकार तेरह महिने तक कार्य कर सकी। तीसरी बार तेरह राजनीतिक दलों के सहयोग से सरकार बनायी और तेरह तारीख को प्रधानमंत्री पद की शपथ ली थी। इस बार भी जब प्रधानमंत्री पद से त्याग पत्र देना पड़ा तो उस रोज तारीख तेरह ही थी। संभवत: उनकी दिली इच्छा पूरी नहीं हो सकी क्योंकि उनकी मृत्यु १६ तारीख को हुई थी।

अमेरिका (अब संयुक्त राज्य अमेरिका) को अस्तित्व में लाने में तेरह का बड़ा ही सार्थक और कारगर योगदान रहा था। अंग्रेजों की तेरह कॉलोनियों को हतियाकर तेरह स्टेट्स से अमेरिका राज्य की शुरुआत हुई थी। अमेरिका के राष्ट्रीय झंडे पर प्रारंभ में, इसलिए तेरह सितारे और तेरह धारियां थी। जैसे जैसे स्टेट्स की संख्या बढ़ती गयी झंडे पर सितारों और धारियों की संख्या में बढ़ोतरी होती गयी। स्पष्ट है, अतएव कि अमेरिकन लोग तेरह को मनहूस मानने की सोच भी नहीं सकते हैं।

न्यूमरोलोजी (अंक विज्ञान) के अनुसार तेरह का अंक अशुभ माना जाता है क्योंकि इसके अनुसार बारह (१२) का अंक तो सम्पूर्णता का प्रतीक होता है और इसमें एक (१) को जोड़ने से बारह की सम्पूर्णता समाप्त होकर तेरह का अंक बनता है। यह प्रक्रम अशुभता बताता है यानि तेरह का अंक अशुभ हो जाता है। टोरटो कार्ड की गड्डी में तेरह नंबर का कार्ड सर्वनाश और मृत्यु का सूचक होता है। प्राचीन काल में फांसी के फंदे तक पहुंचने वाली सीढ़ियों की संख्या तेरह (१३) रखी जाती थी।

एक (१) और तीन (३) से तेरह (१३) का अंक बनता है। पौराणिक विचारों से देखा जाय तो एक (१) का अंक सर्वत्र व्याप्त देवीय शक्ति के अव्यक्त स्वरूप का निरूपण करता है और तीन (३) का अंक ब्रह्मांड के प्रथम हिन्दु देवता ब्रह्मा, विष्णु और महेश की संख्या बताता है। (एक और तीन की महिमा के और भी स्वरूप हो सकते हैं।) ऐसे शुभ लक्षण वाले अंक एक और तीन से बना अंक तेरह (१३) भी शुभ ही होगा। गणित के हिसाब से एक (१) और तीन (३) पूर्णांक और अभाज्य है। तेरह (१३) भी पूर्णांक और अभाज्य होता है। यह एक या तेरह से ही विभाजित हो सकता है।

उपरोक्त प्रसंगों तथा उदाहरणों के अलावा और भी हो सकते हैं। कुल मिलाकर हमारे विचार से, कहा जा सकता है कि जब कभी व्यक्ति के जीवन में तेरह का अंक अनुकूलता दिखाता है, खुश किस्मती रहता है तो ऐसा होना केवल एक संयोग ही होता है। और यदि तेरह का अंक प्रतिकूलता दिखाता है तब उसे अशुभ या खराब मान लेना मनुष्य का भ्रम और अंध विश्वास ही होता है। इसलिए, अंक गणित के अंकों के क्रम में तेरह (१३) के अंक का अपने स्थान पर बने रहने में ही उसकी महत्ता है। ❑

जय जवान कॉलोनी, स्कीम-१, जयपुर



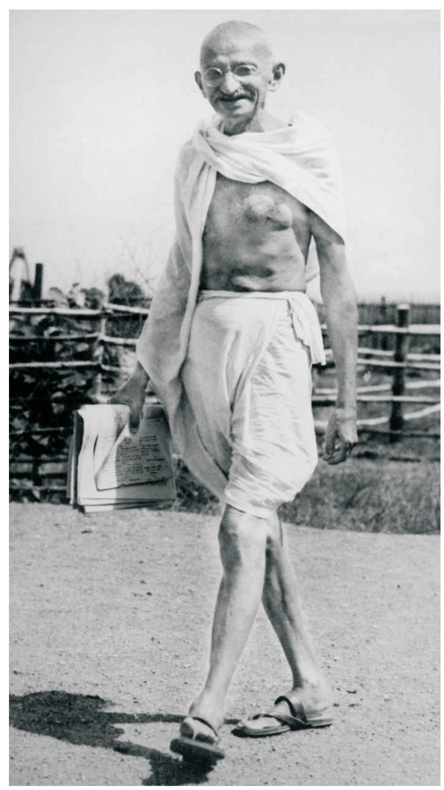
गांधी का शिक्षा-दर्शन

नन्दकिशोर आचार्य

❑

गांधीजी के शिक्षा-चिन्तन को आजकल आधुनिक प्रौद्योगिकी और जटिल विज्ञान से आकर्षित समाजशास्त्रियों और शिक्षाशास्त्रियों द्वारा एक खब्त की तरह ही लिया जाता है। बुनियादी शिक्षा के प्रयोग को व्यापक समाज के लिए असफल मान लिया गया है और अब केवल कुछ गांधीवादी संस्थाओं द्वारा ही उसे एक कर्मकाण्ड की तरह किया जा रहा है– समाज में प्रचलित और स्वीकृत शिक्षा-संस्थाएं सामान्य तौर पर उस से अपने को अलग ही रखे हुए हैं लेकिन यहां यह विचारणीय है कि कोई भी शिक्षा-पद्धति तभी सफल हो सकती है जब हम उस की पृष्ठभूमि में काम कर रहे तत्त्व-दर्शन और मूल-दर्शन के अनुरूप समाज-रचना करना चाहें। दुर्भाग्य से हम स्वतन्त्रता प्राप्त करने के बाद जिस सामाजिक ढांचे की ओर आकर्षित होते गये हैं, वह एक हिंसक मनोवृत्ति वाले समाज का ढांचा है, जो राज्यसत्ता और अर्थसत्ता के केन्द्रीकरण पर टिका है, तथा आधुनिक प्रौद्योगिकी पर आश्रित होने की वजह से प्रकृति और परिवेश के साथ मूलत: हिंसक मनोवृत्ति रखता तथा मनुष्य को असहाय बनाता और उस की स्वनिर्भरता का दमन करता है। गांधीजी के शिक्षा-चिंतन की सार्थकता तभी समझ में आ सकती है जब हम एक अहिंसक और आत्मनिर्भर समाज और व्यक्ति के विकास का लक्ष्य सामने रख कर चलें और केवल शिक्षा-प्रक्रिया को ही नहीं, अपनी राजनीतिक-आर्थिक संस्थाओं और व्यवहार को भी तदनुसार रूपान्तरित करने का सत्याग्रह करें। इस संबंध में प्रसिद्ध अर्थशास्त्री शुमाकर का यह कथन विचारणीय है कि हम दरअस्ल एक तत्त्वमीमांसीय रोग के शिकार हैं, इस लिए इस का इलाज भी तत्त्वमीमांसीय होना चाहिए। गांधीजी का चिंतन हमारे इस रोग का सही निदान और इलाज बताता है और यह कहना शायद अब जरूरी नहीं है कि रोग के कारणों को मिटाये बिना कोई उपचार सफल नहीं हो सकता। ❑

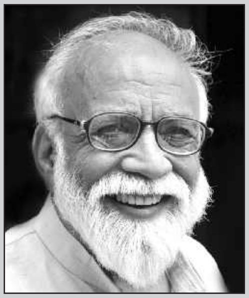
लेखक की पुस्तक सत्याग्रह की संस्कृति से साभार।





संसार घृणा से ऊब गया है। हम देख रहे है कि अब पश्चिमी राष्ट्रों पर थकान हावी होती जा रही है। हम देख रहे हैं कि घृणा का राग अलापने से मानवता की कोई भलाई नहीं हुई है। अब आप ऐसा कीजिए जिससे भारत एक नया अध्याय शुरू कर सके और संसार को एक नया पाठ पढ़ाया जा सके।

शैक्षिक जाग्रति के हिमायती : अनिल सद्‌गोपाल



अनिल सद्‌गोपाल

❑

शिक्षाविद अनिल सदगोपाल आज के शिक्षा जगत के प्रखर चिंतक हैं। इन्होंने अपना पूरा जीवन शिक्षा जगत को समर्पित किया है। बालकों को शिक्षा का अधिकार दिलाने, उन्हें करीब से समझने उनकी पढ़ने में रुचि जगाने में इनकी विशेष भूमिका रही है।
अनिल सदगोपाल ने किशोरों के साथ अनुसंधान एवं शोध का कार्य गांव-गांव जाकर किया। ग्रामीण स्तर के लोगों एवं किशोरों को उनके अधिकारों के प्रति जागृत करने में इनका विशेष योगदान रहा है।
प्रोफेसर मनीष शर्मा प्रस्तुत आलेख में शिक्षाविद एवं सामाजिक कार्यकर्ता अनिल सद्‌गोपाल के जीवन-दर्शन की जानकारी साझा कर रहे हैं। सं. ❑

अनिल सदगोपाल भारत के जाने-माने शिक्षाविद और सामाजिक कार्यकर्ता हैं। इन्हें होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम और प्राथमिक शिक्षा को मौलिक अधिकार के रूप में मान्यता दिलाने के लिए की गई वकालत के लिए जाना जाता है। शिक्षा और सामाजिक क्षेत्र में उनकी यात्रा लगभग ५० वर्षों से बदस्तूर जारी है। इस दौरान उन्होंने अपने काम से सत्ता और तंत्र को कुंभकर्णी नींद से जगाने का विप्लवी प्रयास किया है।

वर्ष १९४० में लाहौर में जन्मे अनिल सदगोपाल ने दिल्ली के सेंट स्टीफन कॉलेज से स्नातक और भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान से परास्नातक किया। इसके बाद वे अमरीका चले गए और केल्टेक (कैलिफोर्निया इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी) से जैव रसायन और आणविक जीव विज्ञान में पीएचडी कर भारत लौट आए। तीन साल तक टाटा इंस्टीट्यूट आफ फंडामेंटल रिसर्च से बतौर फैलो जुड़े रहे।

वर्ष १९७१ में वे मध्य प्रदेश चले आए और यहां होशंगाबाद के पास पिपरिया गांव में एक गैर सरकारी संस्था **किशोर भारती** की स्थापना की। कार्यक्षेत्र चुना स्वास्थ्य, कृषि और शिक्षा। शुरूआती दिनों में अनिल सद्‌गोपाल ने ग्रामीण लोगों को सरकारी योजनाओं एवं उनके अधिकारों से अवगत कराने का काम किया ताकि वे उनका लाभ ले सकें। उन्होंने गरीबी उन्मूलन, सिंचाई की सस्ती तकनीक विकसित करने, पशुपालन को बढ़ावा देने, वन संरक्षण और कृषि मजदूरों के पलायन को रोकने की दिशा में भी काफी काम किया। उनकी पर्यावरण अनुकूल तकनीकों की सराहना भी की गई। ग्रामीण विकास के लिए विज्ञान और प्रौद्योगिकी के प्रयोग के लिए उन्हें जमनालाल बजाज पुरस्कार दिया गया।

वर्ष १९७२ में उनके द्वारा शिक्षा में प्रयोगों की शुरुआत होशंगाबाद साइंस टीचिंग प्रोग्राम से हुई इसके तहत सरकारी स्कूलों के कक्षा ६ से ८ तक के विद्यार्थियों को अपने परिवेश का अवलोकन करने और उपलब्ध सामग्री से प्रयोग करना सिखाया गया। विज्ञान को इस तरह जानना और समझना उनके लिए एक रोचक और मनोरंजक अनुभव था। इसमें अनिल सद्‌गोपाल को अपने साथी वैज्ञानिकों, शिक्षाविदों एवं शोधकर्ताओं के साथ-साथ विभिन्न स्कूल शिक्षकों का भी भरपूर साथ मिला। यह प्रोग्राम शैक्षिक नवाचार में मील का पत्थर बना।

वर्ष १९८२ में शिक्षा में शोध और शिक्षण के उद्देश्य को लेकर **एकलव्य फाउंडेशन** की स्थापना में भी उनकी महत्वपूर्ण भूमिका रही। सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में उनका

अलग रूप भोपाल गैस कांड के बाद देखने को मिला। उन्होंने जहरीली गैस कांड संघर्ष मोर्चा के तहत गैस पीड़ितों को न्याय दिलाने के लिए रैलियों और सम्मेलनों के जरिए गैस पीड़ित लोगों के लिए अपनी आवाज उठाई।

वर्ष १९९४ में वे दिल्ली विश्वविद्यालय के शिक्षा विभाग में बतौर प्रोफेसर नियुक्त हुए। अनिल सद्गोपाल की एक चिंता राजनेताओं द्वारा शिक्षा को हथियार बनाना भी है। सत्ता जब इतिहास को अपनी विचारधारा के अनुरूप नहीं पाती है तो वह इतिहास को 'बनाने' में देर नहीं करती। जब-जब सरकारें बदलती हैं तब तक पाठ्यक्रम को डिटॉक्सिफाई करने की कवायद होती है और पाठ्यक्रम में बदलाव किए जाते हैं। ये बदलाव छात्रों को तो भ्रम में डालते ही हैं साथ ही साथ अराजकता की स्थिति भी पैदा करते हैं।

आज हमारे अधिकांश सरकारी स्कूल संसाधन विहीन और लालफीताशाही से त्रस्त हैं। अनिल सद्गोपाल इन्हें शैक्षिक यहूदी बस्ती की संज्ञा देते हैं। जहां समाज के सबसे गरीब तबके के बच्चे आते हैं। वे यहां पढ़ने नहीं, कुछ समय बिताने आते हैं ताकि उनके मां-बाप काम पर जा सकें। कुछ साल बाद जब बच्चे कुछ करने लायक हो जाते हैं तो उनका स्कूल जाना भी छूट जाता है। कुछ अध्ययन तो यहां तक निष्कर्ष निकालते हैं कि हमारे आधे से ज्यादा बच्चे स्कूल से बाहर हो जाते हैं जिनमें दो-तिहाई लड़कियां होती हैं।

नई शिक्षा नीति को लेकर भी अनिल सद्गोपाल की कुछ सवाल उठाते हैं कि-

क्यों हम अपने बच्चों के लिए सामाजिक-आर्थिक भेदभाव से परे एक समान स्कूल प्रणाली विकसित करने में विफल रहे हैं?

बच्चों की शिक्षा के लिए विदेशी संस्थाओं से भीख मांगने की जरूरत क्यों है?

क्यों हम अपनी आर्थिक प्राथमिकताओं को नहीं बदल पा रहे?

आत्म-निर्भरता की बात करना और २०० विदेशी विश्वविद्यालयों को भारत में ५०० कैम्पस स्थापित करने के लिए आमंत्रित करना परस्पर विरोधी नहीं है?

ऐसे में यहां चल रहे ७०० विश्वविद्यालयों के उन्नयन का क्या होगा?

क्या यह शिक्षानीति वंचित वर्ग के बच्चों को स्थानीय भाषा में पढ़ने और वोकेशनल पाठ्यक्रमों में प्रवेश लेने को बाध्य नहीं करेगी?

यह नीति शिक्षा में निजी क्षेत्र द्वारा लूट से आम जनता को कैसे बचा पायेगी?

शिक्षकों को गैर शैक्षणिक कार्यों से मुक्ति के लिए यह शिक्षा नीति क्या मार्ग सुझाती है?

क्या यह नीति शिक्षा के मनुवादीकरण, उसे भेदभाव पूर्ण बनाने और उसके अति केंद्रीकृत करने की चेष्टा नहीं है?

शिक्षा नीति में सामाजिक समस्याओं को हल करने की कितनी क्षमता है?

८५% छात्रों को उच्च शिक्षा से वंचित करने वाली शिक्षा क्या संविधान विरोधी और सार्वजनिक शिक्षा विरोधी नहीं है?

इस शिक्षानीति द्वारा अंबेडकर और फुले के सपनों को कैसे साकार किया जा सकेगा?

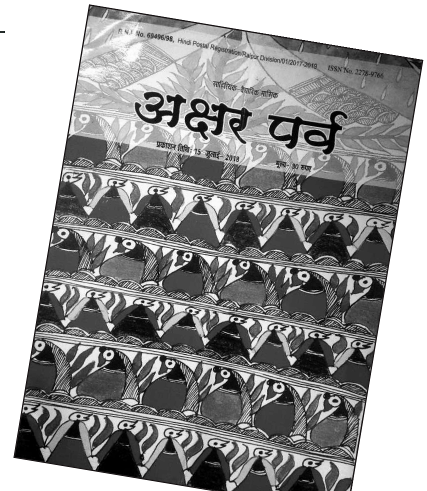
उनके द्वारा लिखित प्रमुख पुस्तकें हैं- शिक्षा में **बदलाव का सवाल, बदलाव की राजनीति और संघर्ष-निर्माण का दर्शन, जन आंदोलन में विज्ञान की भूमिका, चेन्नई घोषणा पत्र और डॉलर की चाल ने जहर घोला भोपाल में।**

अनिल सद्गोपाल अपनी उम्र के आठ दशक पूरे कर चुके हैं, लेकिन आज भी शिक्षा का अधिकार अधिनियम में बदलाव के लिए उनकी लड़ाई जारी है। ❑

५७, महावीर नगर, टोंक रोड, जयपुर-३०२०१८; मो. ९०७९७६७६९९







ललित सुरजन नहीं रहे

❑

देश बंधु पत्र समूह के प्रधान संपादक देश के वरिष्ठ पत्रकार **ललित सुरजन** का ७४ वर्ष की उम्र में निधन हो गया। वे पिछले आठ माह से अस्वस्थ चल रहे थे तथा दिल्ली के एक निजी अस्पताल में उनका उपचार चल रहा था। सुरजन का अंतिम संस्कार राजकीय सम्मान के साथ किया गया।

ललित सुरजन देश के वरिष्ठ पत्रकार, शिक्षाविद्, लेखक, शांतिकर्मी और सामाजिक कार्यकर्ता थे। सुरजन ने अप्रेल १९६१ में जबलपुर से प्रशिक्षु पत्रकार के रूप में अपना पत्रकार जीवन प्रारंभ किया था। उन्होंने समाचार पत्र के संपादन, प्रबन्धन तथा उत्पादन इन सभी में अनुभव हासिल किया।

जनवरी १९९५ से वे देशबंधु पत्र समूह के प्रधान संपादक के रूप में कार्यरत रहे हैं। उन्होंने १९६६ से १९६९ के बीच कॉलेज विद्यार्थियों के लिए स्नातक नामक साहित्यिक पत्रिका का संपादन भी किया। १९६९ में रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर के नवगठित पत्रकारिता विभाग के मानसेवी विभागाध्यक्ष का दायित्व भी ३ वर्ष तक निभाया। सुरजन को १९७७ में थामसन फाउंडेशन, यूके के वरिष्ठ पत्रकार फेलोशिप के लिए चुना गया।

ललित सुरजन एक जाने-माने शिक्षा शास्त्री भी रहे। उन्होंने राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी संस्थान, रायपुर के बोर्ड ऑफ गवर्नर्स के चेयरमेन २००६-२०११, राष्ट्रीय साक्षरता मिशन तथा सर्वशिक्षा अभियान की राष्ट्रीय कार्यकारिणी के सदस्य, केन्द्रीय हिन्दी शिक्षण समिति के उपाध्यक्ष तथा अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद के सदस्य के रूप में अपनी सेवाएं दी हैं।

एक लेखक के रूप में भी सुरजन की पहचान राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर रही है। सन् १९६० से लेखन में सक्रिय रहते हुए उनके दो कविता संकलन एवं पांच निबन्ध संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। उनकी रचनाओं का विभिन्न भाषाओं में अनुवाद भी हुआ है। उनके दो काव्य संग्रह प्रकाशित हुए-अलाव में तपकर, तिमिर के झरने में तैरती अंधी मछलियां और एक निबंध संग्रह समय की साखी।

यात्रा संस्मरण हैं-शरणार्थी शिविर में विवाह गीत, दक्षिण के **आकाश पर ध्रुवतारा और नील नदी की सावित्री,** द बनाना पील (अंग्रेजी)। वे देशबंधु में हर गुरुवार साप्ताहिक स्तंभ लिखते रहे हैं

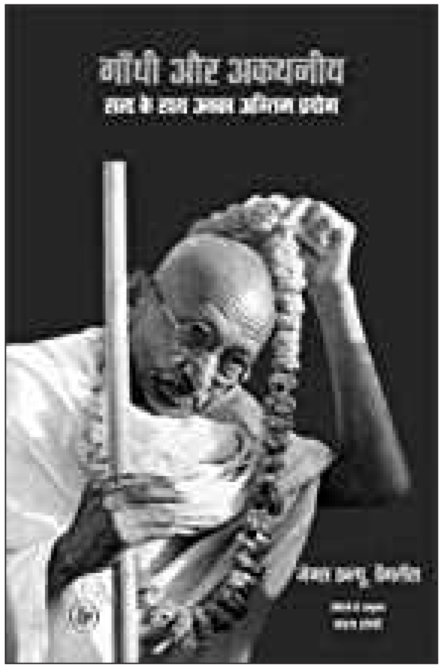
उन्होंने छत्तीसगढ़ में विशुद्ध साहित्यिक पत्रिका '**अक्षर पर्व**' का प्रकाशन किया जिसको देश भर में प्रतिष्ठा मिली। वे देशबंधु के साथ-साथ अक्षर पर्व के संपादक भी रहे।

ललित सुरजन का जन्म २२ जुलाई, १९४६ को महाराष्ट्र के बुलढाणा जिले के उंद्री में हुआ था। १९६६ में उन्होंने हिन्दी में एम एम किया तथा १९७७ में यूके में उच्चतर अध्ययन किया। उनकी चार पुत्रियां, नवनीता, तरूशिखा, व सर्वमित्रा तथा एक दत्तक पुत्री गुंजन है। जीवन संगिनी श्रीमती माया सुरजन है। उनके निधन के समाचार के बाद देशबंधु, हाईवे चैनल परिवार के साथ पत्रकार व साहित्यिक बिरादरी गहन शोक में डूब गई है। ❑

अकथनीय सत्य का ताप

❑

अमेरिकी अध्येता और कार्यकर्ता जेम्स डब्ल्यू डगलस की किताब 'गांधी एंड द अनस्पीकेबल : हिज फाइनल एक्सपेरिमेंट विद ट्रुथ' का हिन्दी अनुवाद मदन सोनी ने किया है। उन्होंने इस किताब का शीर्षक दिया है–गांधी और अकथनीय: सत्य के साथ उनका अंतिम प्रयोग, गांधी की दृष्टि हमेशा नैतिक बनी रही। वे देश और समाज को नि:स्वार्थता के साथ देख सकने की क्षमता रखते थे, तभी डगलस हिन्दी पाठक के लिए प्रस्तावना में लिखते हैं कि गांधी की मृत्यु उसी तरह हुई थी, जिस तरह ईसा की हुई थी– अपने शत्रुओं में निहित ईश्वर को प्रणाम करते हुए, जिसके लिए उन्होंने अपने जीवन के बहुत बड़े हिस्से के दौरान ईसा की सलीब पर चिंतन करते हुए तैयारी की थी। वे यह भी कहते है कि भाषा से लेकर राजनीति और धर्म तक, गांधी पूरी तरह से समावेशी चिंतक थे, गांधीजी के साथ रह चुके नारायण देसाई पुस्तक के बारे में कहते हैं कि यह गहन शोध परक छोटी–सी अद्‌भुत कृति उन दो परस्पर–विरोधी फलसफों की एक वाग्मितापूर्ण कहानी है, जिनका सामना आज मानव जाति कर रही है। किताब में नया तथ्य कुछ भी नहीं है, जो हम जानते न हों, लेकिन डगलस ने इसे नये



दृष्टिकोण से देखा है। मृत्यु से मनुष्य का संबंध, मनुष्य का सत्य के साथ संबंध एवं सत्य का मनुष्य होने से जो संबंध बनता है, उन सभी को वे कई स्तरों पर परखते हैं और गांधी के जीवन से इसके सूत्र निकालते हैं। प्रस्ताव और आभार के अलावा मात्र तीन अध्याय में इन सारे सूत्रों पर अपने विचार को विस्तार देते हैं।

आज हम जिस भारत में रहते हैं, वहां दुनिया की आबादी का पांचवां हिस्सा रहता है। हम आणविक हथियारों से लैस होकर गांधी के अहिंसा के रास्ते से बहुत दूर आ चुके हैं। जब ३० जनवरी, १९४८ को उनकी हत्या हुई थी, तब पूरी दुनिया में शोक की लहर छा गयी थी। शांति के लिए प्रयासरत एक महात्मा ने अपनी आंखें बंद कर ली। आज समूचा विश्व आणविक हथियार के साये तले जी रहा है। ऐसे में ईसा से गहरे प्रभावित डगलस गांधी में ईसा–तत्वों की तलाश करते हैं। गांधी भारतीय चिंतन व जीवन परंपरा के अत्यंत मौलिक प्रतिनिधि हैं। डगलस पूरी मानवता को सचेत करते हुए कहते हैं कि हम राष्ट्रीय सुरक्षा को अपना देवता बना लेते हैं, गांधी की दूसरी हत्या उसी जगह होती है। हम जिस तरह सामूहिक रूप से संपत्ति, सत्ता, और इन सबसे ऊपर, युद्ध की तरह उपासना करते हैं। वह हमें संपूर्ण विनाश की ओर ले जाने वाली है, बशर्ते हम बदल नहीं जाते। हमें शांति, अहिंसा और सामंजस्य के एक सम्मोहक स्वप्न को फिर से देखना होगा। ऐसी कृति से परिचित होने के लिए हिन्दी के पाठकों को डगलस के साथ–साथ मदन सोनी का भी कृतज्ञ होना चाहिए। इस किताब को हिन्दी में ले आने के लिए रजा फाउंडेशन की सराहना की जानी चाहिए।

गांधी और अकथनीय : सत्य के साथ उनका अंतिम प्रयोग / जेम्स डब्ल्यू डगलस
अनुवाद : मदन सोनी / रजा फाउंडेशन एवं राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली।

–मनोज मोहन

अनुपम जी के भरत : दिलीप चिंचालकर


चित्र: दिलीप चिंचालकर

इन्दौर में १३ नवंबर को शाम ७:५६ दिलीप चिंचालकर का देहान्त हो गया। मीलों-मील मोटरसाइकिल दौड़ाने वाले यायावर, पक्षियों में दिनों-दिन खोये रहने वाले रसिक, दैनिक 'जनसत्ता' और 'चकमक' जैसे प्रकाशनों के सज्जाकार, 'हमारा पर्यावरण' और 'आज भी खरे हैं तालाब' जैसी पुस्तकों को अपने रेखाचित्रों से अमर कर देने वाले , विविध प्रतिभाओं के कलाकार, मन को छूने वाले लेखक, हर काम को सरस बनाने वाले शिक्षक, वनस्पति-वैज्ञानिक, गुरु विष्णु चिंचालकर, कुमार गन्धर्व , राहुल बारपुते , बाबा डिगे और राजेंद्र माथुर के बाद के इन्दौर की शान बन कर जीने वाले दिलीप भाई के अनेक परिचय ऐसे हैं कि अनजान व्यक्ति भी सुनकर धनवान हो जाये।

दिलीप सन् २०१६ से कैन्सर से जूझ रहे थे। इस शाम अपनी यात्रा को पूरा कर परलोक की सज्जा करने चले गये।

दिलीप भाई की बहुआयामी प्रतिभा को ठीक से कोई जानता था तो वे थे अनुपम मिश्र। जिनकी तबियत और तासीर दिलीप भाई के साथ 'राम और भरत सी' जुगलबंदी के समान थी। इन दोनों के अथक परिश्रम से देश के सामने आए पर्यावरणीय प्रकाशन 'हमारा पर्यावरण, आज भी खरे हैं तालाब और 'राजस्थान की रजत बूंदें'आज भी नए-नए पाठकों को हतप्रभ करती हैं। इन सभी प्रकाशनों में अनुपम जी कल-कल, अविरल बहती भाषा को दिलीप भाई के बनाए शिव की जटाओं सरीखे तालाबों, बावड़ियों के रेखाचित्रों में सुरुचिपूर्ण बांधा। बेजोड़ और महीन समाज के मन-मानस से ओझल हो चुके तालाबों-बावड़ियों और कुओं को जिस शिद्दत से दिलीप भाई की रेखाओं ने उकेरा था, वे सभी तालाब, बावड़ियां और कुएं स्वयं ही बोल उठे कि ',” हम युगों से आज तक भी खरे ” ही हैं।

दिलीप भाई वर्ष २०१६ से एक असाध्य रोग से जूझने के बावजूद कुमार गंधर्व जी के गाए कबीर के 'निर्गुणी भजन 'सुनते - सुनते 'चदरिया को ज्यों की त्यों 'धर गए। मालवा की मिट्टी सदैव उन्हें अपने लाडले की तरह याद रखेगी। ❑

चित्रकार दिलीप चिंचालकर : एक बानगी



चित्र: दिलीप चिंचालकर



चित्र: दिलीप चिंचालकर

–चकमक से साभार

मिशन ताना बाना : ग्राम सखी संवाद

मेरा गांव मेरी जिम्मेदारी

यह हमारा सातवां ग्रामसखी संवाद है। १७ दिसम्बर २०२० को बगरू खुर्द गांव में संवाद में २०-२५ महिलाओं ने भाग लिया। ग्राम सखी कोमल शर्मा के घर पर स्वावलम्बन पर ही बात की शुरुआत हुई। स्वावलम्बन उन महिलाओं के लिए जो कि कहीं नौकरी नहीं कर सकती। उम्र बड़ी हो चुकी है। शिक्षा भी नौकरी के अनुरूप नहीं है। गांव के बाहर भी काम करने नहीं जा सकती। आवश्यक है कि महिलाएं अपने कौशल को बढ़ायें। जो काम वे जानती हैं, उसे और बढ़िया तरीके से करें। हुनर को तराशें। मानस बनायें कि स्वावलम्बी होना है। भम्भोरिया गांव की ग्राम सखियां मास्क बनाने का काम कर रही हैं। बहुत करीने से मास्क तैयार किए जा रहे हैं। कुछ महिलाओं ने कहा कि वे भी मास्क बनाना जानती हैं। उन्हें काम मिले तो वे भी मास्क बनाने का काम कर सकती हैं। किन्तु इन महिलाओं के पास इन्टरलॉक मशीन नहीं है। उसका समाधान भी इन महिलाओं से करवाया जिनके पास इन्टरलॉक की मशीन है। वे कुछ देर के लिए इन्हें भी काम करने दें।

गांव के लिए हम सबकी क्या जिम्मेदारी है। क्या काम जरूरी हैं जिससे गांव की पहचान हो। सब आगे बढ़ें। सब साथ हों। रूढ़ियां अंधविश्वास न हों। कोमल ने बताया कि अब गांव में मृत्युभोज बन्द हो गया है। हमने पूछा कि कोरोना के कारण से बन्द हुआ है या सबने तय किया है कि अब यह प्रथा बन्द होनी चाहिए। कोमल ने बताया कि शुरुआत तो कोरोना के कारण से ही हुई। सबको सही लगा कि यह भोज बन्द कर देना ठीक है। सभी ने तय कर लिया है कि मृत्युभोज नहीं करेंगे।

इसी प्रकार छूआछूत भी गांव में मुख्य समस्या है। इसके प्रति लोगों की सोच बदलनी है। इस प्रकार जो भी समस्या हम अपने आस पास देखते हैं। गांव में देखते हैं। उसके प्रति लोगों में जागरूकता लाएं। सोच बदलें। तभी संवाद सार्थक होगा।

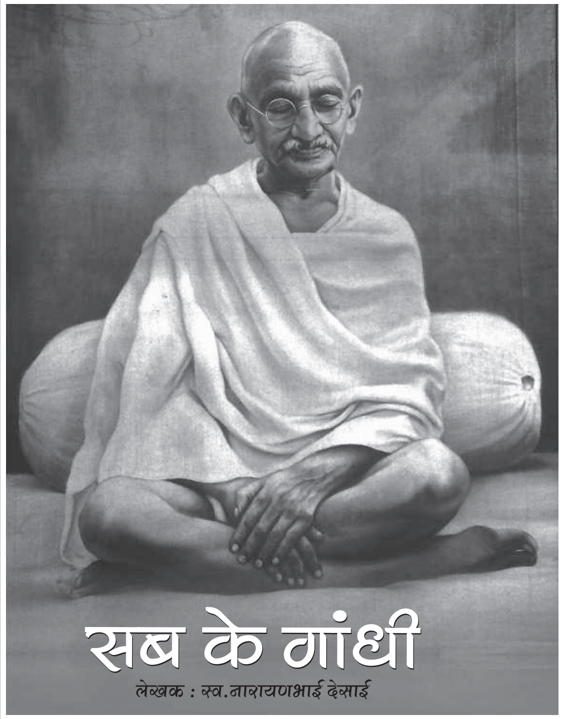
राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति के अध्यक्ष रमेश थानवी ने महिलाओं के साथ संवाद करते हुए समझाया कि महिलाओं के प्रति हिंसा को रोकना है। क्रोध पर काबू पाना है। परहित करो। औरों के लिए जिओ। सभी ग्राम सखी बापू को याद करें। दया, भक्ति, अहिंसा पर सोचें। संत समागम भी करना है। कबीर, रैदास, मीरां, नानक, सहजो, दया सबको घर में बिठाना है। छूआछूत, ऊंच नीच कुछ नहीं है। मीरां ने रैदास को अपना गुरु बनाया और अपने साथ चित्तौड़ ले आयीं। आपने कहा कि किताब पढ़नी है। **घर घर में पोथी घर** बनाना है। मां पढ़ेगी तभी बच्चे पढ़ेंगे। बच्चों के खेलने के लिए क्या हो। बच्चों को इलेक्ट्रानिक और प्लास्टिक के खिलौने खेलने के लिए कभी नहीं दें। उन्हें रंग बिरंगे रंग दो। रंग बिरंगे कागज दो। उसे बनाने दो वह जो बनाता है। मिट्टी में खेलने दो। हर बात के लिए बालक को टोकना ठीक नही है। हम अपने घर में बच्चों के अनुसार क्या करते है। विचारें।

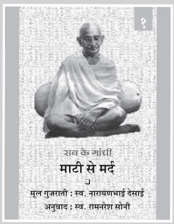
–बटीना मलिक



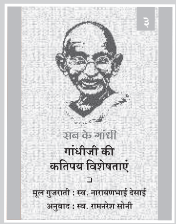


स्वत्त्वाधिकारी राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति द्वारा कुमार एंड कम्पनी, जयपुर में मुद्रित तथा
७-ए, झालाना संस्थान क्षेत्र, जयपुर-३०२००४ से प्रकाशित। संपादक - रमेश थानवी





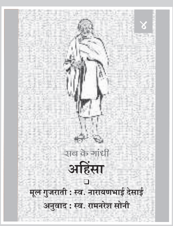


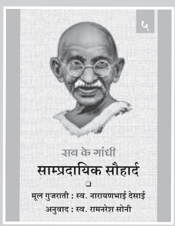


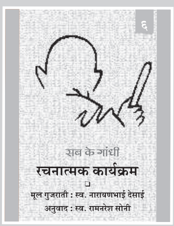


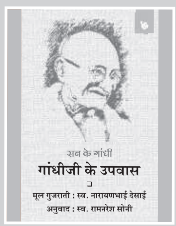
सहयोग राशि के लिए
बैंक विवरण

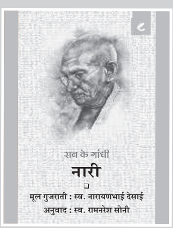
BANK OF BARODA
Rajasthan Adult Education Association
Branch Name : IDS Ext. Jhalana Jaipur
I.F.S.C. Code : BARB0EXTNEH
(Fifth Character is zero)
Micr Code : 302012030
Acct.No. : 98150100002077

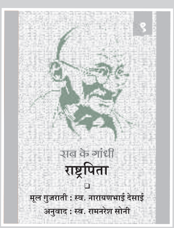


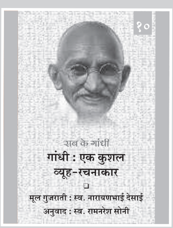


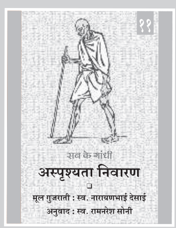






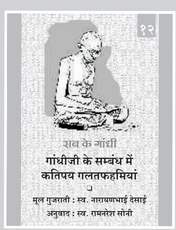






राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति

7–ए, झालाना संस्थान क्षेत्र,
जयपुर–302004



सब के गांधी

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति
7–ए, झालाना संस्थान क्षेत्र
जयपुर–302004

१२ पुस्तकों के एक सैट की सहयोग राशि रुपये ५००/– मात्र डाक खर्च अलग से देय होगा।